

ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास

प्रथम भाग

- १ ब्रज संस्कृति की भूमिका
- २ ब्रज का इतिहास

रचयिता

प्रभुदयाल मीतल

प्रस्तावना लेखक

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल



राजकमल प्रकाशन

दिल्ली-६

राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली द्वारा
साहित्य संस्थान मधुरा के लिए प्रकाशित ।

© १९६६, साहित्य संस्थान मधुरा ।

प्रथम संस्करण

प्रथम आवरण पृ० १२ स० ७०२३ रि०

गुरुवार, १५ जुलाई सन् १९६६ २०

मूल्य ३२ रुपये

मुद्रक

त्रिलोकीनाथ भीतल, जगन्नाथ प्रेस, अग्रवाल भवन, मधुरा ।

प्राक्कथन

●

परम हृदय और आनन्द का बात है कि जिन ग्रंथ की रचना में मैं विगन कई वर्षों में दिन-रात लगा हुआ था वह अब पूरा होकर प्रकाशित हो रहा है। कोई शक्ति किसी काम का आरम्भ तो कर सकना है किन्तु उसकी पूर्ति होना भगवान का इच्छा पर निर्भर है। बड़-बड़ विद्वद् महापुरुषों और घुरघुर विद्वानों के ग्रंथ भी कभी-कभी अधूरे रह जाते हैं। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी हून श्रीमद्भगवत् की 'मुवाधित्री टीका और एद्विनराज जगन्नाथ कृत 'रस गंगाधर' जैसे अनुपम ग्रंथ इनके प्रमाण हैं। श्री कृष्णदास कविराज ने जब श्री चैतन्य चरितामृत की रचना आरम्भ की थी, तब वे अत्यन्त वृद्ध और अशक्त हो चुके थे। अपनी उस अवस्था के कारण उन्हें जिना था कि उनके द्वारा वह ग्रंथ पूरा हो सकना या नहीं। किन्तु भगवान् के भरापन के अपनी रचना में लग रहे और अन्त में उन्होंने उस महाग्रंथ का पूरा करके ही दम लिया। श्री चामनचन्द्र थाप जब बौद्ध जातक कथामा के विंगल वाटमय का बगला भाषा में अनुवाद कर रहे थे तब वे भी उसकी पूर्ति के सबंध में बड़े शक्ति थे। अन्त में कई वर्षों के कठिन परिश्रम के उपरांत जब वह काम पूरा हुआ, तब उन्होंने सताप की श्वास ली थी। भरा व्यक्तित्व और मरी यह रचना उन महास्वी महापुरुषों और उनके विख्यात ग्रंथों की तुलना में तुच्छ एवं नगण्य है किन्तु फिर भी मैं अपने दीपकालीन परिश्रम का इस सुन्दर परिणति पर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् का धन्यवाद देता हूँ। मुझे यह कहना मनाई सक्ताच नहीं है कि जब मैं इस ग्रंथ की रचना में प्रवृत्त था तब अपने मन स्वास्थ्य और अपनी जीएँ गीएँ काया के कारण मुझे सत्त्व धारण करने की शक्ति थी कि भरे द्वारा यह बड़ा काम पूरा हो सकेगा या नहीं। किन्तु जिन भगवान् श्री कृष्ण के पावन प्रदण की गौरव-गाथा इस ग्रंथ में वर्णित है, उन्हीं के परम अनुग्रह से मैं इस पूरा करने में समर्थ हुआ हूँ। जैसा सूरदास जी ने कहा है, —'आकी कृपा वगु गिरि लखे शंकर का सब कुछ दरसाइ।' — भगवान् की कृपा के बल पर सब कुछ किया जा सकता है।

श्री कृष्ण ने अपनी आनन्दमयी सरस लीलाओं और लाकापवारा वाय-कलाप में भारत के जन-जीवन को जितना प्रभावित किया है उतना किसी अन्य महापुरुष के नहीं। इसीलिए उन्हें 'पुरुषोत्तम' ही नहीं, 'परब्रह्मा' तक कहा गया है। उन्होंने अपने आरम्भिक जीवन में ही एक बार अपने स्नेह-स्निग्ध सरल स्वभाव से मायुष का धारा प्रवाहित की थी। ता दूसरी बार अपने प्रचंड बल-विक्रम की धार उमारी थी। फिर अपने उत्तर जीवन में उन्होंने एक बार अपने अनुपम राजसी वैभव के बल पर 'राजाधिराज' की पदवी प्राप्त की थी, तो दूसरी बार वे अपने अपूर्व तत्त्वज्ञान के कारण जगन्गुरु के गौरवपूर्ण पद पर आसीन हुए थे। उनकी इन बहुरंगी जीवन-धारा में उनके लीला धाम ब्रजमण्डल अर्थात् प्राचीन गुरसन जनपद में जिस सस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ वह ब्रज सस्कृति के नाम से लोक में प्रसिद्ध है। श्री कृष्ण ने भोग और त्याग, युद्ध और शांति, कम और नान, प्रकृति और निवृत्ति तथा इत्यादि और परलोक में अद्भुत अनुलन और

(१) श्री चैतन्य चरितामृत, मध्य लीला, द्वितीय परिच्छेद (७६-८१) में कविराज महोदय ने अपनी विस्तार बड़े मार्मिक शब्दों में व्यक्त की है।

वष्णव धर्म के पुनरुद्धार काल में जब कृष्णोपासना और कृष्ण भक्ति का पुनः प्रचार हुआ, तब ब्रज और व्रज सस्कृति के गौरव की पुनर्स्थापना का भी प्रयास किया गया था। किंतु उस काल में वह कार्य बड़ा कठिन था। कारण यह है, एक तो गतात्म्या की उपमा से ब्रज और व्रज सस्कृति की गौरवगाली परंपरा लुप्तप्राय हो गई थी, दूसरे उस काल के नव स्थापित मुसलमानों का उनके प्रति बड़ा विरोधी दृष्टिकोण था। फिर भी विक्रम की १२वीं में लेकर १६वीं गतात्म्या तक के काल में कृष्णोपासक वैष्णव धर्माचार्यों और उनके अनुयायी भक्तजनानों ने नाना प्रकार की कठिनाइयाँ एवं विपत्तियाँ को सहन कर बड़े साहस और आत्म बल का परिचय दिया था। भगवान् श्री कृष्ण के जीवन दंगन में अनुप्राणित और उनकी गिम्नामा में प्रभावित होकर मयथी निबाक, केच बालासारी, माधवेन्द्र बल्लभ, चतुर्धर, हरिवंश, हरिदास, विठ्ठल, रूप-मनातन और सूरदास प्रभृति धर्माचार्यों और भक्त-महात्माओं के कारण व्रज सस्कृति के एक-एक रूप का उदय हुआ, जिनमें समस्त दंगन में नव जीवन का मंचार किया था। उन धर्मप्राण महानुभावों का रहन-सहन जहाँ अतिथि त्याग और वराग्यपूर्ण था, वहाँ उनके अपना और उनकी रचनाओं में माधुर्य भक्ति का समावेश था। इस प्रकार उन्होंने श्री कृष्ण के अनुकरण पर भोग और त्याग प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामंजस्य का भाव प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने तप-त्याग और आत्म बल तथा अपनी विद्वत्ता, माधुर्य-भावना और कला प्रियता में व्रज के विस्मृत गौरव और व्रज सस्कृति की उच्चिन्न परंपरा को कृष्ण भक्ति के मुहूर्त धरातल पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया था।

श्री बल्लभाचार्य अपनी प्रथम देशव्यापी यात्रा करने हुए जब स० १५५० के लगभग पहिली बार व्रज में आये थे, तब यह पुरातन प्रदेश खिली के मुलताना की मजहबी कट्टरता के उत्पीड़न में अस्त था। उन असहिष्णु मुलताना ने यहां पर बने हुए जैन बौद्ध वैष्णव, शैव, गतादि धर्म संप्रदायों के प्रायः सभी मंदिर देवालय नष्ट भ्रष्ट कर दिये थे। उन्होंने मूर्ति-पूजा करने और नये मंदिर बनवाने पर कड़ी पाबंदी लगा दी थी। इस प्रकार यहाँ के धर्मप्राण निबासी अपने उपास्य देव की सेवा पूजा करने से वंचित हो जाने के कारण बड़े दुखी थे। श्री बल्लभाचार्य ने गोवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा प्रचलित कर और उनके मंदिर निर्माण का आयोजन कर अपने भक्त साहस और श्रद्धा आत्म बल का परिचय दिया था। उनके कारण उस काल में मथुरा गोवर्धन और गोवृत्त की धार्मिक स्थिति में कुछ परिवर्तन होने के साथ व्रज सस्कृति ने भी अपनी करबट बदली थी। व्रज के अथ लीला-स्थला के पुनरुद्धार और व्रज सस्कृति के व्यापक प्रचार के लिए उन्हें अपने व्यस्त और छोटे जीवन में अवकाश नहीं मिला था।

चतुर्थ महाप्रभु द्वारा बगाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार किये जाने में बंगीय भक्तों का व्रज और व्रज सस्कृति के प्रति श्रद्धा आकर्षण हुआ था। श्री माधव डपुरी और ईश्वरपुरी की प्रेरणा से चतुर्थ देव ने व्रज के लीला स्थला के अनुसंधान करने का आयोजन किया। उनके लिए उन्होंने स० १५६८ में अपने दो अनुचर सबंधी ताकनाथ चक्रवर्ती और भूगभ गास्वामी को व्रज का सर्वेक्षण करने की भेजा था। वे दाना भक्तजन कुछ काल तक व्रज के घेरे बना में घटक कर वापिस चले गये। उन्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। स० १५७३ में चतुर्थ महाप्रभु स्वयं व्रज में आये थे। उस समय उन्होंने यहाँ के प्रमुख बना की यात्रा तीर्थों में स्नान और कतिपय लीला स्थला एवं देवालयों के दंगन करने के अतिरिक्त गोवर्धन के निबटवर्ती राधाकुंड नामक

[illegible][illegible][illegible]

जब काल के प्रवाह में प्राचीन राज में जा घोर बोझ धर्मों का प्रभाव बढ़ गया तब कृष्णापासना और राज मर्यादा का महत्व कुछ कम हो गया था। उस काल में था कृष्ण के जो बड़े शान और उनके लाला-स्वला की सपना जन-बोझ धर्मों के मिटाओं और उनका स्वरूप धर्मों में रामा धर्म के प्रति योग्यता का धारणा बढ़ गई था। उस काल के सथा घोर चीनी धार्मिक के विवरणों में राज के गौरव और राज मर्यादा की महत्ता के उत्थान कम मिलते हैं।

वैष्णव धर्म के पुनरुद्धार का नम जव कृष्णायामना और कृष्ण भक्ति का पुन प्रचार हुआ, तब वन और वन सत्सृति के गौरव की पुनस्थापना का भी प्रयास किया गया था। किन्तु उन काल में वह कार्य बड़ा कठिन था। कारण यह है, एक ही गतादिमा की उपासी से वन और वन सत्सृति की गौरवगाली परंपरा लुप्तप्राय हो गई थी। दूसरे उन काल के नव स्थापित मुसलमानों का उनका प्रति बड़ा विरोधी दृष्टिकोण था। फिर भी विक्रम की १२वीं से लेकर १६वीं गताद्वी तक के काल में कृष्णायामक कृष्णव धर्माचार्यों और उनके अनुयायी भक्तजन नाना प्रकार की कठिनाइयाँ एवं विपत्तियों का सहन कर बैठे साहस और आत्म बल का परिचय दिया था। भगवान् श्री कृष्ण के जीवन दान में अनुप्राणित और उनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर मधुसूदनी, कृष्ण कान्हा, माधवेन्द्र, बलभ, चतुर्धर, हरिवंश, हर्षिदास, विठ्ठल, रूप-मनोमोहन और मुरारि प्रभृति धर्माचार्यों और सत-महाराष्ट्रों के कारण वन सत्सृति के एक एम रूप का उत्पन्न हुआ, जिसने अमर्य दान में नव जीवन का संचार किया था। उन धर्मप्राण महानुभावों का सहन-सहन जहाँ अतिथि त्याग और वैराग्यपूर्ण था वहाँ उनके उपासी और उनकी रचनाओं से माधुसूदनी का समावेश था। इस प्रकार उन्होंने श्री कृष्ण के अनुकरण पर भोग और पाप, प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामंजस्य का आदर्श प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने तप-त्याग और आत्म-बल तथा अपनी विद्वत्ता, माधुसूदनी-भावना और कला प्रियता में वन के विस्मृत गौरव और वन सत्सृति की उच्चिष्ठ परंपरा को कृष्ण भक्ति के मुख परातल पर पुन प्रतिष्ठित कर दिया था।

श्री बलभ्राचार्य अपनी प्रथम दैव्यापी यात्रा करने हुए जब स० १५५० के लगभग पहिली बार वन में आये थे, तब वह पुरातन प्रजा शिष्टी के मुलानों की मजहबी कट्टरता के उत्पीड़न में पड़ते थे। उन असहिष्णु मुलानों ने यहाँ पर बने हुए जैन, बौद्ध, वैष्णव, गैर, शान्ति धर्म मन्त्रालयों के प्रायः सभी मंदिर शैवाल नष्ट कर दिए थे। उन्होंने मूर्ति पूजा करने और नव मन्दिर बनवाने पर कड़ी पाबंदी लगा दी थी। इस प्रकार यहाँ के धर्मप्राण निवासी अपने उपासी के सवा-पूजा करने में विवश हो जाने के कारण बड़े दुःखी थे। श्री बलभ्राचार्य ने गोवधन में शीनाथ जी की सेवा प्रचलित कर और उनके मन्दिर निर्माण का आयोजन कर अपने अदम्य साहस और प्रभु आत्म बल का परिचय दिया था। उनके कारण उस काल में मधुरा, गोवधन और गाकुल की धार्मिक स्थिति में कुछ परिवर्तन होने के साथ वन सत्सृति में भी अपनी करबट बनी थी। राज के साथ नीला-नयना के पुनरुद्धार और वन सत्सृति के व्यापक प्रचार के लिए उन्हें अपने व्यस्त और भाड़े जीवन में अवकाश नहीं मिला था।

चैतन्य महाप्रभु द्वारा बंगाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया जाना मधुसूदनी के वन और वन-सत्सृति के प्रति प्रभु आकांक्षण हुआ था। श्री माधवेन्द्रपुरी और ईश्वरपुरी की प्रेरणा में चैतन्य देव ने राज के लीला स्थलों के अनुसंधान करने का आयोजन किया। उनके लिए उन्होंने स० १५६८ में अपने दो अनुचर साथी लाकनाथ चक्रवर्ती और भुगम गाम्वाधी की वन का सर्वेक्षण करने को भेजा था। वे दोनों भक्तजन कुछ काल तक राज के चौहद बना में भटक कर वापिस लौट गये। उन्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। स० १५७३ में चैतन्य महाप्रभु स्वयं वन में आये थे। उस समय उन्होंने यहाँ के प्रभु बना की यात्रा, तीर्थों में स्नान और बलि पय लीला स्थल एवं देवालयों के दान करने के प्रतिरिक्त गोवधन के निकटवर्ती राधाकुंड नामक

सामाजिक स्थापित कर ब्रज सभूति को जन्म दिया था। यह मूल धार्मिक सभूति है इसी लिए इसके प्रत्येक अंग पर धर्मोपासना का गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके प्रमुख तत्व मन्द मोह, मया ममपण और मम-वय सामाजिक हैं, जो कृष्णोपासना की पृष्ठभूमि में परिलक्षित होकर पूरे पड़े हैं। ब्रज सभूति मत्स्य-गिरि-मुदरम् की भावना में प्राप्त हुई। क्योंकि इस अखिल भारतीय सभूति के अंतर्गत इसका सर्वात्मक स्वरूप बहा जा सकता है।

ब्रज सभूति का पावन प्रयोग यह ब्रजमंडल जहाँ श्री कृष्ण का जन्म और उनकी लीला का कारण सीमावर्ती है, वहाँ इसका यह बड़ा दुर्भाग्य है कि विगत पाँच सहस्र वर्षों का विविध युग में यह अनेक बार भीषण विपत्तियाँ और दुष्पटनाएँ में घेरित होना रहा है। उससे कारण ब्रज सभूति भी अनेक बार घनती गिरावटी रही है, किन्तु उसका मरना नाप कभी नहीं हुआ। यद्यपि 'ब्रज और ब्रज सभूति' नाम अधिक प्राचीन नहीं है तथापि इनकी सत्ता और महत्ता कृष्ण काल से ही विद्यमान रही है। विगत पाँच सहस्र वर्षों के मुत्तय काल में 'ब्रज' और 'ब्रज सभूति' ने विविध नाम-रूपा से आत्म प्रकाश करते हुए अनेक भयंकर क्षणों में खड़े हैं। इसके लोचकालीन इतिहास की लंबाई गाथा का मूल अनेक अध्यायों में बिखरे पड़े हैं। इनके अध्ययन और ब्रज का जो रूप सामने आता है वह बड़ा शिक्षाप्रद, प्रेरणादायक और चिंतारोत्तेजक है। उसमें पाता होता है कि विविध युगों में किस प्रकार ब्रज तथा ब्रज सभूति की उत्पत्ति, अवनति एवं पुनरुत्पत्ति हुई थी, और जब इनकी क्या स्थिति है तथा भविष्य की क्या सम्भावनाएँ हैं।

पूरुमेन अर्थात् प्राचीन ब्रजमंडल पर एक बड़ी विपत्ति श्री कृष्ण की विद्यमानता में ही उस समय आई थी जब मगध का शक्तिशाली सम्राट् जरासंध ने अपनी विनाश सेना के साथ इस प्रदेश पर भीषण आक्रमण किया था। श्री कृष्ण ने अपनी अघेष्ठाकृत छोटी सेना द्वारा उस आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया था किन्तु यह के जन महार को रोकने के लिए वे ब्रज से निष्क्रमण कर द्वारका चले गये थे। उनके साथ बहुसंख्यक यादव और गांधार भी ब्रज को छोड़ गये। इस प्रकार उस समय ब्रजमंडल प्रायः सूना और निजन हो गया था। उसके बाद यादव गण जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ ब्रज सभूति का विस्तार होना गया, किन्तु अपने जन्म स्थान ब्रज में वह उस समय निधिल हो गई थी। महाभारत के पश्चात् जब श्री कृष्ण का तिरोधान और द्वारका का शोचनीय अंत हुआ, तब कृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभ ने ब्रजमंडल में आकर यादव राज्य की पुनः प्रतिष्ठा के साथ ब्रज सभूति को भी बल प्रदान किया था। उस समय गांधार के पुरोहित महर्षि गार्हपत्य ने श्री कृष्ण के वे लीला स्थल बतलाये थे जो बाड़े ही समय की निजन्ता के कारण जंगली लता गुल्मा से आच्छादित होकर बौद्ध बना में अतुल्य हो गये थे। वज्र ने कृष्ण लीला के अनुसार उन स्थानों का नामकरण किया और उन पर स्मृति चिह्न बनवाये तथा कुछ प्रमुख लीला स्थलों पर बस्तियाँ बसायी थी। इस प्रकार श्री कृष्ण के पश्चात् वज्रनाभ ने सर्वप्रथम प्राचीन ब्रज और ब्रज सभूति के उच्छिन्न गौरव की परंपरा का पुनः स्थापित किया था।

जब काल के प्रवाह से प्राचीन ब्रज में जन और बौद्ध धर्मों का प्रभाव बढ़ गया, तब कृष्णोपासना और ब्रज सभूति का महत्त्व कुछ कम हो गया था। उस काल में श्री कृष्ण के जीवन दान और उनके लीला-स्थलों की अपेक्षा जैन बौद्ध धर्मों के सिद्धांतों और उनके स्तूप चतुर्था रामों आदि के प्रति लोका की आस्था बढ़ गई थी। उस काल के अंधे और चीनी यात्रियों के विवरणों में ब्रज के गौरव और ब्रज सभूति की महत्ता के उल्लेख कम मिलते हैं।

वपुः धर्म व पुनरुद्धार वान म जब कृष्णोपासना और कृष्ण भक्ति का पुन प्रचार हुआ, तब ब्रज और ब्रज सस्कृति व गौरी की पुनस्थापना का भी प्रयास किया गया था। किन्तु उस काल में वह कार्य बड़ा कठिन था। कारण यह है, एक तो गतादिया की उपासना से ब्रज और ब्रज सस्कृति की गौरवशाली परंपरा लुप्तप्राय हो गई थी, दूसरे उस काल के नव स्थापित मुसल मानी राज्य का उनका प्रति बड़ा विरोधी दृष्टिकोण था। फिर भी विक्रम की १२वीं में लेकर १६वीं गतादी तक के काल में कृष्णोपासक वपुः धर्माचार्यों और उनके अनुयायी भक्तजनों ने नाना प्रकार की कठिनाइयाँ एवं विपत्तियाँ का सहन कर बड़े साहस और धैर्य वन का परिचय दिया था। भगवान् श्री कृष्ण के जीवन दंगन में अनुप्राणित और उनकी गिन्यामा में प्रभावित होकर नवश्री निवाक, वैष्णव काश्मीरी, माधवेन्द्र बल्लभ, चतुर्थ, हरिवंश, हरिदाम, विट्ठल, रूप-महातन और मूरदाम प्रभृति धर्माचार्यों और सत-महात्माओं के कारण ब्रज सस्कृति व एक ऐसी रूप का उदय हुआ जिसने समस्त दंग में नव जीवन का संचार किया था। उन धर्मप्राण महापुरुषों का रहन-सहन जहाँ प्रतिगम त्याग और वराभ्युपगम था, वहाँ उनके उपासक और उनकी रचनाओं में माधुर्य भक्ति का समावेश था। इस प्रकार उन्होंने श्री कृष्ण के अनुकरण पर भाग और त्याग प्रवृत्ति और निवृत्ति के सामंजस्य का आदर्श प्रस्तुत किया था। उन्होंने अपने तप-त्याग और धैर्य वन तथा अपनी विद्वत्ता, माधुर्य-भावना और कला प्रियता में ब्रज के विस्मृत गौरव और ब्रज सस्कृति की उज्ज्वल परंपरा को कृष्ण भक्ति व मुहूर्त घण्टाल पर पुन प्रनिहित कर दिया था।

श्री बल्लभाचार्य अपनी प्रथम दंगध्यापी यात्रा करन हुए जब स० १५५० व लगभग पहिली बार ब्रज में आये थे, तब यह पुरातन प्रदेश दिल्ली के सुलताना की मजहबी कट्टरता का उत्पीड़न से ग्रस्त था। उन घसहिष्णु सुलतानों ने यहाँ पर बने हुए जन, चौक, चैत्य, गौरी, गतादि धर्म संप्रदाय का प्रायः सभी मंदिर वैवालय नष्ट भ्रष्ट कर दिए थे। उन्होंने मूर्ति-पूजा करने और नये मंदिर बनवाने पर कड़ी पाबंदी लगा दी थी। इस प्रकार यहाँ के धर्मप्राण निवामी अपने उपास्य देव की सेवा-पूजा करने से वंचित हो जाने के कारण बड़े दुखी थे। श्री बल्लभाचार्य ने गोवर्धन में श्रीनाथ जी की सेवा प्रचलित कर और उनके मंदिर निर्माण का आयोजन कर अपने अदम्य साहस और अपूर्व धैर्य वन का परिचय दिया था। उनके कारण उस काल में यमुना गावर्धन और गोकुल की धार्मिक स्थिति में कुछ परिवर्तन होने के साथ ब्रज सस्कृति में भी अपनी करवट बढ़ाई थी। ब्रज के धर्म लीला-रसना के पुनरुद्धार और ब्रज सस्कृति के व्यापक प्रचार के लिए उन्हें अपने व्यस्त और छोटे जीवन में अवकाश नहीं मिला था।

चैतन्य महाप्रभु द्वारा बंगाल में कृष्ण भक्ति का प्रचार किया जाना से बंगाली भक्तों का ब्रज और ब्रज सस्कृति के प्रति अपूर्व आकर्षण हुआ था। श्री माधव-दुपुरी और इच्छरपुरी की प्रेरणा से चैतन्य देव ने ब्रज के लीला स्थलों के अनुसंधान करने का आयोजन किया। उसके लिए उन्होंने स० १५६८ में अपने दा अनुचर सखी लाकनाथ चक्रवर्ती और भूगभ गास्वामी को ब्रज का सर्वेक्षण करने को भेजा था। वे दाना भक्तजन कुछ काल तक ब्रज के घेरे बना में भटक कर वापिस चले गए। उन्हें अपने कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई। स० १५७३ में चैतन्य महाप्रभु स्वयं ब्रज में आये। उस समय उन्होंने यहाँ के प्रमुख बना की यात्रा, तीर्थों में स्नान और कवि रूप लीला स्थला एवं देवालय का दंगन करने के अतिरिक्त गावर्धन के निकटवर्ती राधाकुंड नामक

लुप्त तीर्थ का उद्धार किया था। अनन्तर जब वृन्दावन गया तब राधा कृष्ण की रासादि लीलाओं का स्मरण कर व प्रेमावली में बार-बार बिहल हान लग। उनका वह दया दय कर उनके अनुचर उन्हें ब्रज से वापिस ल गया था। इस प्रकार ब्रज में अथिन् समय तक न रहने का कारण चतुर्थ महाप्रभु स्वयं यहाँ के लुप्त लीला स्थलों का उद्धार नहीं कर सके। उक्त कार्य के लिए उन्होंने अपने विद्वान् पापद गवध्री रूप मनातन गोस्वामिया को ब्रज में जान का आन्त्र किया था। उन महानुभावों ने ब्रज में स्थायी रूप से निवास कर प्राचीन अनुश्रुतियाँ और पौराणिक उल्लेखों का आधार पर ब्रज के अनेक लीला स्थलों का अन्वेषण किया। उनमें साथ ही उन्होंने कृष्ण भक्ति का प्रचार और ब्रज संस्कृति का महत्त्व की स्थापना के लिए अपने विद्वत्प्राण प्रयासों की रचना की थी। रूप गोस्वामी कृत ग्रंथों में ब्रज के लीला स्थलों का परिचय प्राप्त करने के लिए 'मथुरा माहात्म्य' उल्लेखनीय है, जिसे उन्होंने विविध पुराणों के गंभीर मनन के उपरान्त स० १६०० के लगभग रचा था। चतुर्थ संप्रदाय के एक अन्य विद्वान् श्री नारायण भट्ट ने ब्रज के समस्त रूप का प्रकट करने का बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने ब्रज के समस्त धन उपवन ताल और लीला स्थलों का व्यापक अन्वेषण किया ब्रज यात्रा और रास-लीला का प्रचार किया तथा कृष्ण भक्ति और ब्रज-संस्कृति की महत्ता के स्थापना के अनेक ग्रंथों की रचना की थी। उनके सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रज भक्ति विनायक' की रचना स० १६०६ में हुई थी। चतुर्थ संप्रदायी सबंधी सनातन गान्धारी गोपाल भट्ट कृष्णदास कविराज प्रभृति विविध विद्वानों की रचनाएँ भी भक्ति क्षेत्र में बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। किन्तु सबंधी रूप गान्धारी और नारायण भट्ट के ग्रंथ ब्रज संस्कृति की महत्ता सूचक आधारभूत रचनाएँ हैं।

सबंधी हित हरिकण हरिदास स्वामी, प्रबोधानन्द और हरिराम यास प्रभृति महात्माओं ने वृन्दावन के गौरव का वृद्धि की तथा गोसाईं विद्वत्नाथ ने गावधन का माहात्म्य बढ़ाया और गाकुल का नव निर्माण किया था। मुगल सम्राट अकबर का उद्धार गान्धारी ब्रज संस्कृति के लिए करदान सिद्ध हुआ। उस काल में ब्रज के लीला स्थलों में कई शताब्दी के पश्चात् मन्दिर एवं देव स्थान बनवाये गये और कृष्णोपासना का पृष्ठभूमि में विविध कलाओं का व्यापक प्रचार हुआ था। उस समय ब्रज संस्कृति के सभी अंगों की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी।

बल्लभ संप्रदाय गान्धारी विद्वत्नाथ जी के वंशज सबंधी गाकुलनाथ जी और हरिराम जी ने ब्रजभाषा गद्य में वार्ता साहित्य की रचना द्वारा कृष्ण भक्ति की पुष्टि और ब्रज संस्कृति का प्रसार में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। इस संप्रदाय के एक भक्त जन जगतनन्द ने अपनी रचनाओं द्वारा ब्रज के स्वरूप का स्पष्टीकरण और ब्रज यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया था। उसकी ब्रज भाषा पद्य की रचनाएँ ब्रज वस्तु वस्तु ब्रज ग्राम वस्तु और श्री गुसाईं जी की वन यात्रा स० १७३० के लगभग लिखी गई थी। चतुर्थ संप्रदायी गोपाल कवि ने स० १६०० में श्री वृन्दावन धामानुरागावली ग्रंथ की रचना की थी। इस पद्यात्मक ग्रंथ में तत्कालीन वृन्दावन के प्राय सभी दृश्यनीय स्थल मन्दिर देवालय देव विग्रह और सप्त महात्माओं का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है।

अंगरेजी शासन काल में स० १८२६ से १८३४ तक मथुरा का जिलाधीन थी उस नामक एक विद्वान् अंगरेज था। वह विद्वान् होत हुए भी ब्रज संस्कृति के पुनरुद्धार में बड़ा सहायक हुआ था। उनमें वृन्दावन के ध्वसप्राय गावधिनन्द जी के प्राचीन मन्दिर का जाँचोँछा करवाया,

वहाँ के घाटों को मरम्मत कराई और गाहुन की पुरानी बस्ती को गनी बाजारों को मरम्मत कराया था। उनका मदन महत्वपूर्ण काय मधुरा के पुरातत्व महालय की आरम्भिक व्यवस्था और ब्रज की प्राचीन परंपरा का संरक्षण करना था। प्रज्ञानवीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी उनमें बड़े परिश्रम और लगन के साथ ब्रज का ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक अनुसंधान कर जो बहुमूल्य तथ्य एकत्र किये थे वे अगरेजी भाषा में 'मधुरा-ए हिस्ट्रिक मेमोअर' नामक ग्रंथ में प्रकाशित किये गये। उनमें पहिले बज के परिचयक जो ग्रंथ उपलब्ध थे वे या तो मरुत में रखे हुए पुराण थे और पौराणिक गैली की अन्य वृत्तियाँ थीं अथवा ब्रजभाषा में लिखी हुईं उसी गैली की पद्यात्मक 'रचनाएँ' थीं। श्री आठम का उक्त ग्रंथ नवीन दृष्टिकोण से ब्रज के इतिहास के लेखन और प्रकाशन का आरम्भिक प्रयत्न था। उनका प्रथम संस्करण स० १९२१ में, द्वितीय संशोधित संस्करण स० १९२७ में और तृतीय परिवर्धित संस्करण स० १९४० में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इन ग्रंथों की अनेक बातें अब अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण जान पड़ती हैं, तथापि उनका बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। अब तक ब्रज के संबंध में जितनी रचनाएँ लिखी हैं उनमें आठम के ग्रंथ का थोड़ा बहुत उपयोग अवश्य किया गया है। यदि यह ग्रंथ न होता, तो ब्रज में संबंधित बहुत सी बातें अज्ञान ही रह जाती।

मधुरा के पुरातत्व महालय की बहुमूल्य सामग्री और उनके मुयाज महाध्यायी की सेवाओं द्वारा ब्रज के सांस्कृतिक अनुसंधान में बड़ा योग मिला है। विद्वद् डा० वामुदेवशरण जी अग्रवाल जब मधुरा के महाध्यायी थे, तब उन्होंने ब्रज के ऐतिहासिक, पुरातात्विक और सांस्कृतिक संरक्षण का बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया था। उनके विविध कार्यों में श्री कृष्ण-जन्मस्थान का संरक्षण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उक्त स्थल की प्राचीन अनुश्रुति को उन्होंने पुरातत्व की सामग्री में मण्डित कर स० १९६४ में उसके इतिहास पर एक ग्रन्थालु निबंध प्रकाशित किया था। आज मधुरा के श्री कृष्ण-जन्मस्थान का जो निर्विवाद महत्व है, उसका श्रेय डा० अग्रवाल जी की स्थापना की ही है। डा० मलयन्त्र जी जब मधुरा में अध्यापक थे, तब उन्होंने ब्रज की साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रगति में बड़ा योग दिया था। श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी और श्री हरिदासर जी गुप्ता की प्रेरणा तथा सेंट कन्यालाल जी पोद्दार, डा० वामुदेवशरण जी अग्रवाल और डा० सत्यत्र जी के प्रयत्न से कातिक कृ० ५ स० १९६७ (दिनांक २० अक्टूबर सन् १९४०, रविवार) का मधुरा में जिस ब्रज साहित्य मंडल की स्थापना हुई, उसने ब्रज की शौरव-वृद्धि का बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसकी मुख पत्रिका ब्रज भारती में ब्रज की बहुमूल्य साहित्यिक सामग्री प्रकाशित हुई है।

ब्रज के संबंध में अब तक जो कई छापी-बही परिचयात्मक और इतिहास-परक रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं उनमें श्री युगलकिशोर चतुर्वेदी द्वारा 'मधुरा-महिमा' (स० १९६१) डा० वामुदेवशरण जी के प्रधान संपादकत्व में प्रस्तुत विशाल 'पादार्थ अभिनंदन ग्रंथ' (स० २०१०) और श्री कृष्णदास वाजपेयी द्वारा 'ब्रज का इतिहास' (भाग १-स० २०११, भाग २-स० २०१५) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। डा० सत्यत्र जी ने अपने विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों के अतिरिक्त लोक सस्कृति का अध्ययन संबंधी कई विषयालु रचनाएँ भी प्रस्तुत की हैं। उनमें ब्रज लोकसंस्कृति (स० २००५), ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन (स० २०१४), मध्ययुगीन हिंदी साहित्य का लोक साहित्यिक अध्ययन (स० २०१७) और लोक साहित्य विज्ञान (स० २०१६) अपने विषय की अनुपम रचनाएँ हैं। इनमें ब्रज की लोक संस्कृति विषयक बहुमूल्य सामग्री प्रकाश में आई है। इन सभी रचनाओं की

भावश्यक सामग्री का इस ग्रंथ में विविध खंडों में यथा स्थान उपयोग किया गया है। इस प्रकार सवधो रूप गोस्वामी नारायण भट्ट, जगतनंद गोपाल बरि, प्रातम, बामुदयनारण अथवाल सत्येन्द्र और कृष्णलाल वाजपयी जैसे विद्वानों ने समय समय पर व्रज संहति के अध्ययन का जो राज माग निमित्त किया उसी पर चलते हुए मैंने इस ग्रंथ की रचना की है। यदि मेरे द्वारा उन धर्मग्रामियों का माग का कुछ भी प्राप्त किया जा सके, तो मैं अपने प्रयत्न को साधक समझूंगा।

X

X

X

श्री कृष्ण द्वारा प्रवर्तित और अग्रणीत महानुभावों द्वारा विवर्णित व्रज का महान् संहति का क्षेत्र प्रत्यक्ष विगत है और इसका इतिहास बड़ा लंबा है। इसने विविध कालों में भारतीय धर्म, कला साहित्य और लोक जीवन का समृद्ध करने में बड़ा महत्वपूर्ण योग दिया है। उस गौरवपूर्ण योगदान का यथायथ स्वरूप का यथावत् दान गदा द्वारा कराना बड़ा कठिन है। इस ग्रंथ में तो उसके विगत और भव्य रूप की एक झलक मात्र ही प्रस्तुत करने की धृष्टता की गई है। यह ग्रंथ ६ खंडों में पूरा हुआ है, जिनके नाम हैं—१ व्रज-संहति की भूमिका २ व्रज का इतिहास, ३ व्रज के धर्म संप्रदाय, ४ व्रज की कलाएँ ५ व्रज का साहित्य और ६ व्रज की लोक संहति। इस ग्रंथ के प्रथम दो खंड इस भाग में प्रवर्णित किये गये हैं। गेय चार खंड अथवा भागों में प्रकाशित होंगे। यहाँ पर प्रथम दो खंडों का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। पाँच खंडों का परिचय अथवा भागों के प्रवर्णन में दिया जावेगा।

प्रथम खंड 'व्रज संहति की भूमिका' में सात अध्याय हैं—१ व्रज की उत्पत्ति और उसका महत्व २ व्रज का प्राकृतिक और भौगोलिक वर्णन ३ व्रज के पशु पक्षी और जीव जंतु ४ व्रज का मानव जातियाँ, ५ व्रज संहति के उपकरण—व्रज की सांस्कृतिक यात्रा ६ व्रज की रासलीला ७ व्रज के उत्सव त्योहार और मेले। इस प्रकार इस खंड में व्रज संहति के प्रमुख अंगों का सर्वेक्षण करत हुए उसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है।

प्रथम अध्याय व्रज की रूपरेखा और उसका महत्व में व्रज के नामकरण, व्रज के विस्तार व्रज के विविध रूप और व्रज के प्राचीन गौरव का विगत विवर्णन किया गया है। इसमें व्रज के विस्तार और उसके रूपों के संबंध में अधिकतर मौलिक सामग्री है, जिसके स्पष्टीकरण के लिए कई मानचित्र भी दिये गये हैं। इन मानचित्रों का प्रचुर अवसर और पर्याप्त अध्ययन के उपरांत तयार कराया गया है। व्रज की दीर्घकालीन परंपरा में इसके कई रूप उभर कर आये हैं जो विविध युगों में अपना अपना महत्व प्रदर्शित करते रहे हैं। इनमें व्रज का राजनतिक रूप तो बिल्कुल स्थिर नहीं रहा, किंतु इसके धार्मिक स्वरूप की सत्ता और महत्ता स्थायी रही है। इसी के अंतर्गत 'माध्वायिक व्रज' के रूप में चौदहवीं शताब्दी की परिधि का वह भू-भाग है, जो वास्तविक व्रज माना जाता है। इसके दर्शन और परिभरण के लिए ही व्रज यात्रा की परंपरा प्रचलित हुई है। इसके सांस्कृतिक और भाषाभाषा रूप वृत्तर व्रज और व्रजभाषा क्षेत्र के रूप में प्रसिद्ध हैं। व्रज का अधिकांश भाग उत्तर प्रदेश में और शेष भाग राजस्थान एवं हरियाणा में है, इसलिए यह एक राजनतिक इकाई के रूप में संगठित नहीं है। फिर भी इसका सांस्कृतिक रूप एक ऐसा स्वायत्त संगठन है जो यह मिश्र करता है कि राजनतिक एकता की अपेक्षा सांस्कृतिक एवं अधिकांश अविवर्णित और स्थायी होता है।

द्वितीय अध्याय ब्रज का प्राकृतिक और भौगोलिक वर्णन ब्रज के उभ नैसर्गिक रूप की भाँकी प्रस्तुत करता है, जिसके लिए समस्त मागत में लाखा यात्री प्रति वर्ष आते हैं और दिव्य सुख का अनुभव करते हैं। यद्यपि ब्रज के पहाड़ी टीले नयी-नाल कुंड सरोवर, वन उपवन, कुंज-वदमवडी आदि का प्राकृतिक मोन्द्य पूर्ववत् नहीं रहा, तथापि इसकी महत्ता और पवित्रता की छाप यात्रियों के हृदय में ऐसी हृदय से जमी जाती है कि वे इसके शोभा विहीन भग्न रूप पर ही मुग्ध हो जाते हैं। काल के कुटिल प्रभाव से वन की पावन पहाड़िया खटिन होकर राहिया और मिट्टियों के रूप में सड़का पर बिछ गई, ब्रज की सदानीरा गभीर यमुना बरसाती नदी वन गद्ग और सदैव जल से भरे रहने वाले कुंड मरावर सूख गये, ब्रज के सघन वन-उपवनों का काट कर उनमें बस्तिया बसा दी गई और ब्रज की मनारम कुंजा का प्राकृतिक स्वरूप का नष्ट कर उन्हें गद्ग भूभागों में परिवर्तित कर दिया गया, राजस्थानी रीतिस्तान में भीषण आक्रमण कर ब्रज की हरियाली का धूल में मिला दिया, फिर भी ब्रज में अभी कुछ ऐसी मूल्यवान् वस्तु हैं, जहाँ का स्वाभाविक मोन्द्य दगा का क मन का बरबस माह लेता है। नदगाव, बरसाना और कामवन के अचला में व स्थल ब्रज के पुरातन स्वरूप का अंश में संजोए हुए हैं।

तृतीय अध्याय ब्रज के पशु पक्षी और जीव जन्तु से संबंधित है। जब ब्रज में वन-उपवनों की बहुलता थी, तब यहाँ विविध प्रकार के पशु-पक्षियों और जीव-जन्तुओं का भी बड़ा आधिक्य था। ब्रज के इतिहास और ब्रजभाषा कवियों की रचनाओं में इनके पक्षों उल्लेख मिलते हैं। इस अध्याय में तत्त्वबन्धी राक्षस सामग्री प्रस्तुत की गई है, जिसे ब्रजभाषा कवियों की मरस उत्पत्ति से सम्बन्धित किया गया है। ब्रज सभ्यता में पशुओं में गाय और पक्षियों में मार का बड़ा महत्व माना गया है। वर्तमान काल का भौतिक सम्पत्ति भी गाय को दूध की आर्थिक समृद्धि का आधार मानती है और मोर का सरकारी आदेश राष्ट्रीय पक्षी ही घोषित किया गया है। ऐसी दशा में ब्रज के इन परंपरागत पशु-पक्षियों का संरक्षण करना आवश्यक है।

चतुर्थ अध्याय 'ब्रज की मानव जातियाँ विषयक है। इसमें ब्रज की नुतनप्राय यज्ञ, माग और आनीर जातियों का स्वरूप वर्णन है और कुछ प्राचीन जातियों से संबंधित महत्वपूर्ण सामग्री है। वर्तमान जातियों में यादवों का महत्व अधिक है क्योंकि इनकी परंपरा भी दृष्टि से संबंधित मानी जाती है। जाट मूलतः एक कृषिजीवी जाति है जो बहुत बड़ी संख्या में ब्रज में बसी हुई है। विदेशी शासन के अत्याचारों ने इसे नैतिक शक्ति दत्ता दिया है। इस जाति के दौर पुरुषों ने मुसलमानी शासन काल में अनेक कष्टों का सहने हुए भी अत्याचारों का विरोध किया था और फिर ब्रज में स्वतंत्र हिंदू राज्य की स्थापना की थी। डोंग और भरतपुर के जाट राजाओं ने 'ब्रजेश्वर' भयवा 'ब्रजराज' के विरुद्ध धारण कर ब्रज के प्रति अपने अधिकारपूर्ण समत्व का परिचय दिया है। ब्रज की इस ऐतिहासिक जाति की गौरव-गाथा इस अध्याय में और अन्यत्र कुछ विस्तार से मिलती गई है।

पंचम अध्याय में 'ब्रज सभ्यता के उपकरणों का उल्लेख करते हुए 'ब्रज की सांस्कृतिक यात्रा' का विवरण वर्णन किया गया है। ब्रज के वन उपवन, कुंज-वदमवडी, कुंड-सरोवर, तीला स्थल और ऐतिहासिक स्थान तथा मंदिर-दवालय और महात्माओं के निवास-स्थल आदि के एक साथ दर्शन करने का सुगम साधन ब्रज की 'यात्रा' है, जिसका आयाजन प्रति वर्ष बड़े ठाट से किया

जाता है। इस अध्याय में हम यात्रा की परंपरा और इसके इतिहास, यात्रा संबंधी विविध ग्रंथ तथा यात्रा के समस्त स्थला और दशनीय वस्तुओं का खोजपूर्ण विचार वर्णन किया गया है। इस प्रकार यह अध्याय ब्रज के सांस्कृतिक स्वरूप की स्पष्ट भाँकी प्रस्तुत करने के कारण अत्यंत उपयोगी है।

छठ अध्याय म 'ब्रज की रास लीला' का अनुसंधानात्मक विस्तृत वर्णन है। 'राम श्रज' का लोक प्रसिद्ध और घम प्रधान 'संगीत रूपक' है। इसम नृत्य, नाट्य, गायन, वादन और वाष्पादि कलाओं का घर्षोपासना के साथ ऐसा समन्वय किया गया है कि यह ब्रज सस्कृति का सर्वाधिक समय उपकरण ही नहीं, बल्कि इसके सामूहिक स्वरूप का प्रतीक बन गया है। इस अध्याय म रास के प्रादुर्भाव और इसकी परंपरा का बोधपूर्ण वर्णन करने के अनंतर बप्पण धर्माचार्यों द्वारा इसके पुनरुद्धार किये जाने का एतिहासिक विवेचन किया गया है। इसी प्रसंग म विस्तृत समीक्षा के बाद यह बतलाया गया है कि सबंधी बल्लभाचार्य, हरिदास स्वामी, घमडेट्टे, नारायण भट्ट, हित हरि वगैरह और बिठूलनाथ आदि महानुभावों म से रास के प्रारम्भकर्त्ता होने का श्रेय किसको दिया जा सकता है। इसके बाद रास रसिक महात्माओं और इसकी प्रचारक रास महलियों का मौलपूर्ण वर्णन है तथा रास के रूप विधान का कलात्मक विवेचन है। अंत म रास के विंगल रंजभाषा साहित्य का परिचय और उससे कुछ रम्य पदा का संकलन है। इस प्रकार इस अध्याय म ब्रज सस्कृति क इस आवश्यक घम से संबंधित बड़ी बहुमूल्य सामग्री है।

सातवाँ अध्याय 'व्रज के उत्सव, त्योहार और मेलों' से संबंधित है। जहाँ 'सात बार, नी त्योहार' की कहावत प्रचलित हो, वहाँ इस प्रकार के आयोजनों की अधिकता होना स्वाभाविक है। व्रज के उत्सव, त्योहार और मेले अपनी प्राचीन परंपरा तथा अपने भव्य रूप के कारण ममस्त देश में प्रसिद्ध हैं। इसीलिए इनका आनंद प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष लाखों यात्री भारतवर्ष के विभिन्न स्थानों पर व्रज में आते हैं। इस अध्याय में ऋतुओं और महीनों के क्रम से व्रज के प्रायः सभी उत्सव, त्योहार और मेला का बड़ा रोचक और खोजपूर्ण वर्णन किया गया है। व्रजभाषा कविता की रचनाओं में भी अनेक उत्सव-त्योहारों का सरस वर्णन मिलता है। उनके कतिपय उद्धरण इसी प्रसंग में दिये गये हैं। 'होनी व्रज का सबप्रधान उत्सव-त्योहार है। उसके पश्चात् श्रावण के भूलोत्सव का महत्व माना जाता है। इन प्रधान उत्सवों का इस अध्याय में विस्तार से वर्णन किया गया है। इस प्रकार इस अध्याय के आंतर प्रथम खंड की समाप्ति हुई है।

×

x

x

द्वितीय बृहत् म 'ग्रन्थ का इतिहास' वर्णित है। "सर्व विविध अध्याया मा व्रज के राजनैतिक विकास और ह्रास की व्याख्या करता है। जिससे भी प्रदेश की संस्कृति पर वहाँ की राजनैतिक स्थिति का बहुत प्रभाव पड़ा है। इसलिए ऐतिहासिक विकास का अध्ययन करने के लिए हमें इस पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना आवश्यक है।"

इस तरह का प्रथम अध्याय 'आदि काल' में संवर्जित है। इसमें प्रागैतिहासिक काल में लेकर गुप्त काल अर्थात् विक्रमपूर्व स० ४३ तक की घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यह अध्याय जिनकी सभी कालावधि का नैमैट हुए है, उतना ही अधिक महत्वपूर्ण भी है। इसमें वैदिक काल, कृष्ण काल, बुद्ध महावीर काल और मौर्य गुप्त काल की प्रमुख घटनाएँ क्रमानुसार वर्णित हैं। उस युग में ब्रजमंडल गुरसेन जनपद कहलाता था। श्री कृष्ण ब्रज संस्कृति के निर्माता थे और उन्हीं के परिवार गांधी और मत्तवत वनीय माया या इसका सबप्रथम प्रचार हुआ था। इस लिए श्री कृष्ण के जीवन-दंगन और उनके काल की घटनाओं पर विस्तार से विचार करना आवश्यक समझा गया है। उन घटनाओं का पौराणिक गनी के अलौकिक धावरण से निवाल कर उन्हें ऐतिहासिक घरातल पर लौकिक और बुद्धिगम्य रूप में ही प्रस्तुत करने का यथासंभव प्रयत्न किया है। मगध सम्राट जयमगध के लगानार आक्रमण के कारण श्री कृष्ण के साम बहू-संख्यक यादव गण प्राचीन ब्रज को छोड़ कर द्वारका चले गये थे और वहाँ से उनका ममस्त भारत में विस्तार हुआ था। फलतः उनका माय ब्रज संस्कृति के उत्पन्न भा संवत्न व्याप्त हो गये थे। बुद्ध महावीर काल की धार्मिक क्रांति के ध्वराय म ब्रज संस्कृति की प्रतिपाल धारा एक बार मंद पड़ गई थी किन्तु कालांतर में वह फिर प्रबल वेग से प्रवाहित हुल लगी थी। बौद्ध काल की घटनाओं में भगवान् बुद्ध के मधुरा भागमन और उनके द्वारा यहाँ के दुदमनीय यक्षा के आतक का दूर करने की अनुयुति प्रसिद्ध है। किन्तु बुद्ध के आवागमन काल माग के कनिषथ स्वला की पहिचान के सबध में विद्वानों में मतभेद नहीं है। इस अध्याय में भगवान् बुद्ध के माग के दो म्यल 'वरज' और 'आतला' पर प्रथम बार तिलुयात्मक प्रकाश टाला गया है। जन तीथकरा और विणेय के प्रतिम कवली जम्बू स्वामी का मधुरा से जो सबध था, उसमें उस काल के ब्रज के इतिहास की गौरव प्रदान किया है। मौर्य काल में मधुरा में एक बौद्ध समाचार्य उपगुप्त हुआ था। उसमें मधुरा की नगर बधू वासवदत्ता का समाग पर आच्छ कर और सम्राट अशोक की बौद्ध धर्म के विस्तार की प्रेरणा देकर बड़ी क्वाति प्राप्त की थी। शुग काल में ब्रज संस्कृति के प्राण भागवत धर्म की बड़ी वनति हुई थी। उस काल में भारतीयों के अतिरिक्त विदेशी भी इससे प्रभावित हुए थे। यूनानी राजत होलिमोदोर द्वारा भगवान् वामुदव के प्रति थद्धा अमक्त करने के लिए गहदध्वज की स्थापना करना ब्रज संस्कृति के तत्कालीन व्यापक प्रभाव का सूचक है। इस अध्याय में उपयुक्त सभी महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख करने के उपरान्त अंत में इस दीध काल की उल्लेखनीय उपलब्धियाँ की विस्तृत समीक्षा की गई है।

द्वितीय अध्याय 'पूर्व मध्य काल' में विक्रमपूर्व स० ४३ से विक्रम स० ६०० तक की घटनाएँ वर्णित हैं। उस काल में ब्रजमंडल गुरसेन प्रदेश की अपेक्षा 'मधुरामंडल' अथवा मधुरा राज्य कहा जाने लगा था। इस अध्याय के आरम्भ में एक और कुपाण जैसा विदेशी जातिमा के आक्रमण और उनके द्वारा यहाँ राज्य स्थापन करने का उल्लेख किया गया है। उन विदेशी जातिमा ने पहिले ब्रज संस्कृति को कुछ क्षति पहुँचाई था, किन्तु बाद में उनके आक्रमण प्रभाव से वे ऐसे पराभूत हुए कि उन्होंने भारतीयों से भी अधिक इसकी प्रगति में योग दिया था। जब राज-महिषी कुमुदम (कनोजिका) ने मधुरा में धार्मिक कार्यों के लिए स्तूप और बिहार का निर्माण कराया और उसने पुन छोडास (मुदास) के शासन काल में भागवत धर्म के अनुयायी किसी वसु नामक धार्मिक जन ने कृष्ण-जमस्यान पर भगवान् वामुदेव के चतु गाला महा स्थान (मंदिर) में

तोरण और वेदिका की व्यवस्था की थी। कुपाण काल में निर्मित कृष्ण लीला का एक गिला-नवड भी मिला है, जिस अब तक उपलब्ध श्री कृष्ण की सबसे प्राचीन मूर्ति कहा जा सकता है। मथुरा मंडल में वासुदेव कृष्ण के मंदिर और उनकी मूर्ति की विद्यमानता के ये सबसे प्राचीन प्रमाण हैं, जो इतिहास और पुरातत्त्व में साक्ष्य में अब स प्राय दो हजार वर्ष पहिले के सिद्ध होते हैं। कुपाण काल में और विष्णु के सम्राट् कनिष्क के शासन में प्राचीन ब्रज अर्थात् मथुरामंडल की बड़ी सांस्कृतिक प्रगति हुई थी। उस काल में यहाँ व्यापार-वाणिज्य के साथ ही साथ धर्मोपासना और विद्या कला की भी बड़ी उन्नति अवस्था थी। मूर्ति कला के लिए तो मथुरा नगर भारतवर्ष में सब से बड़ा केंद्र माना जाता था। उस काल के मथुरामंडल की सांस्कृतिक समृद्धि ने समस्त देश को चमकृत कर दिया था। कुपाणों का विष्णो शासन भारत में नाग राजाग्रा द्वारा समाप्त किया गया। यादव गण के पश्चात् कदाचित् नागों ने ही मथुरामंडल में स्वाधीन राज्य की स्थापना की थी, अतः उनका शासन काल प्राचीन ब्रज के इतिहास के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। नागों के पश्चात् गुप्ता का गौरवशाली शासन आरम्भ हुआ। गुप्त काल भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्ण युग के नाम से प्रसिद्ध है, क्या कि गुप्त सम्राटों के शासन में इस देश की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक विद्या विषयक और कला संबंधी उन्नति चरमसीमा पर पहुँच गई थी। उनकी राजधानी प्राचीन मगध का प्रसिद्ध नगर पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) थी। परम भागवत गुप्त सम्राटों द्वारा ब्रज की प्राचीन सस्कृति की प्रगति को भी बड़ा बल मिला था। महान् गुप्त सम्राट् चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने मथुरा के कृष्ण-जन्मस्थान पर एक भव्य मन्दिर बनवाया था, जो ५ वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी तक वासुदेव कृष्ण की उपासना का प्रमुख केंद्र रहा था और जिसने ब्रज की प्राचीन सस्कृति और धार्मिक भावना के प्रसार में बड़ा योग दिया था। जिल्लो में कुमुव मीनार के निकट भट्टरीली नामक स्थल पर एक प्राचीन लोह स्तंभ है जिस पर किसी चद्र राजा की प्रशस्ति प्रकृत है। यह निश्चित है कि वह स्तंभ किसी भव्य स्थल में हटा कर वहाँ लगाया गया है, किन्तु वह पहले किम स्थान पर था इसके संबंध में विद्वानों में बड़ा विवाद है। हमारा अनुमान है वह लोह स्तंभ वास्तव में 'विष्णु-वज्र' है जिस चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने पालकी पिता समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के साथ मथुरा के कृष्ण-जन्मस्थान काल अपने मंदिर में लगवाया था। इस विषय पर विद्वानों को विचार करना चाहिए। गुप्त शासन के अंतिम काल में विदेशी बबर हूणों ने मथुरामंडल पर भीषण आक्रमण किया था जिससे यहाँ की बड़ी सांस्कृतिक हानि हुई थी। हूण लोग पश्चिमोत्तर सीमांत और पश्चिम प्रदेशों में धूँ बाँधकर करते हुए तूफान की सी तेजी से मथुरामंडल में आये थे और यहाँ भीषण तूट मार कर मध्य भारत तक बढ़ गये थे। अतः मंडसर (मालवा) के वैश्य जातीय वीरश्रेष्ठ यशोधमन ने उन्हें पराजित किया था। उसके बाद हूण लोग भारतीय धर्म और सस्कृति को स्वीकार कर यहाँ बस गये और यहाँ की विभिन्न जातियाँ में घुल मिल गये थे। हूणों की एक बहुत बड़ी सरया ब्रज सस्कृति को स्वीकार कर मथुरा मंडल में भी बस गई थी। मथुरा नगर के 'मिहारपुरा मुहल्ला में सम्भवतः पहल हूणों की ही बस्ती थी और हूण नेता मिहिर कुल के नाम पर उस मुहल्ला का नामकरण हुआ होगा। हूणों को पराजित करने वाला वीरवर यशोधमन भारत के गौरवशाली विक्रमादित्या की परंपरा में अंतिम था। उपर्युक्त इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं के विशद वर्णन के अनंतर इस अध्याय के अंत में उस काल की कला-उपलब्धियों की समीक्षा की गई है।

तृतीय अध्याय मध्य काल में विक्रम सं० ६०० से १२६३ तक की घटनाएँ लिखी गई हैं। इस काल में भारत की राजनैतिक गति विविधा का क्षेत्र पाटलिपुत्र (पटना) की अपेक्षा मगध-यमुना के दामाव स्थित कायकुब्ज (कन्नौज) हो गया था और वहाँ का महास्वी सामक ह्य-वधन प्रतिम भारतीय सम्राट था। उस काल में चीन का बौद्ध यात्री ह्वेनसांग भारत-भ्रमण के लिए आया था। उसका लिखा हुआ यात्रा-वृत्तांत उस काल की भारतीय स्थिति का जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। वह विदेशी यात्री सं० ६६२ में मथुरा भी आया था। उसने मथुरामठल की तत्कालीन स्थिति के संबंध में जो कुछ लिखा है उसमें पात होता है कि ७ वीं शताब्दी में 'मथुरा राज्य' एक बड़ी राजनैतिक इकाई था। उसकी सीमाएँ प्रायः वही थीं जो आजकल के 'सांस्कृतिक क्षेत्र' अथवा राजभाषा क्षेत्र के अधिकांश भाग की हैं। उस समय का मथुरा राज्य ह्य के साम्राज्य का एक भाग था अथवा स्वाधीन राज्य, इनमें संबंध में विद्वानों में मतभेद है। ह्यवधन के पश्चात् इस देश में जो अनन्त युगांतरकारी घटनाएँ हुई थीं, उनमें तीन ऐसी हैं जिन्होंने मथुरामठल की भी बड़ा प्रभावित किया था। वे घटनाएँ हैं—१ बौद्ध धर्म का पतन और उसकी भारत में समाप्ति २ राजपूत राजाओं का भारत पर आक्रमण। बौद्धधर्म का पतन हान पर पौराणिक महत्त्व का प्रसार और मुसलमानों का भारत पर आक्रमण। बौद्धधर्म का पतन हान पर पौराणिक (हिंदू) धर्म का उत्थान हुआ था और मथुरा उसका प्रमुख केंद्र बन गया था। राजपूतों के विविध राज्यों का स्थापना से मथुरामठल का राजनैतिक महत्त्व तो कम हो गया था। राजपूतों के विविध महत्त्व बहुत बढ़ गया था। उसका कारण यह था कि उस काल में राजपूत राजा हुए प्रायः उसी पौराणिक धर्म के अनुयायी थे, जिसका मथुरामठल एक बड़ा केंद्र था। मुसलमानों का आक्रमण से इन देशों की जो भीषण धार्मिक, धार्मिक और सांस्कृतिक क्षति हुई थी, उसका कुछ मथुरामठल को सबसे अधिक भोगना पड़ा था। मुसलमान आक्रमणकारियों में महमूद गजनवी पहला व्यक्ति था, जिसने अपनी भयंकर लूट भारत में सं० १०७४ में मथुरामठल का सभ्यता कर लिया था। उस बरबर लुटने के अनन्त महमूदों का स्मृत्यु और लूट के तालव में मथुरा के सबसे महमूद गजनवी पहला व्यक्ति दवालाय के साथ कृष्ण-जन्मस्थान वाला वह प्रसिद्ध मंदिर भी नष्ट कर लिया था जिस प्रायः ६ शताब्दियों में ब्रह्मचर्य विकसित होने में बनवाया था। उन मंदिरों में भेंट से प्राप्त जा विपुल संपत्ति कई शताब्दियों से एकत्र हाथी आ रहा थी, उन सबका उस विदेशी आक्रमणकारी ने एक ही ढंग से लूट लिया और उसे वह सबका ऊँटों पर लाद कर गजनी ले गया। महमूद गजनवी के पुत्राधार आक्रमण और उसकी भीषण लूट का वणन जिन मुसलमान इतिहास-लेखकों ने किया है, उनमें से एक अल-उल्की ने मथुरा के तत्कालीन वीर सनानायक कुलचंद (कुलचंद्र) का बड़ा आश्चर्यजनक वृत्तांत लिखा है। उसका कथन स पात होता है कि कुलचंद्र एक बड़े राज्य का स्वामी था। उस समय महाबल में बड़े बड़े भवन एवं मंदिर थे और मथुरा नगर तो संकटा समृद्धि-रक्षा का लिए महमूद गजनवी से बड़ा भीषण युद्ध किया, जिसमें उस वीर-पुरुष का वनिदान हुआ था। कुलचंद्र के विषय में अनन्त उल्की के उक्त कथन के अतिरिक्त कोई अन्य ऐतिहासिक उल्लेख अथवा पुरातात्विक प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। एना अनुमान होता है, वह मथुरामठल के प्राचीन यादव वंश का कोई वीर पुरुष था, जिसने उस काल में अपने स्वाधीन राज्य की स्थापना

तोरण और वेदिका की व्यवस्था की थी। कुपाण काल में निर्मित कृष्ण-शिला का एक शिला सह भी मिला है जिस सब तक उपलब्ध थी कृष्ण की सबसे प्राचीन मूर्ति कहा जा सकता है। मथुरा मंडल में वामुदेव कृष्ण व मन्दिर और उनकी मूर्ति की निम्नमानता के ये सबसे प्राचीन प्रमाण हैं, जो इतिहास और पुरातत्त्व के साक्ष्य में अब स प्राय दो हजार वर्ष पहिले का मिद्ध होत हैं। कुपाण काल में और विशेष कर सम्राट कनिष्क व गामन में प्राचीन ब्रज प्रभाव मथुरामंडल की बड़ी सांस्कृतिक प्रगति हुई थी। उस काल में यहाँ व्यापार-वाणिज्य व साथ ही साथ धर्मोपासना और विद्या कला की भी बड़ी उन्नत अवस्था थी। मूर्ति कला के लिए ता मथुरा नगर भारतवर्ष में अब स बड़ा केन्द्र माना जाता था। उस काल के मथुरामंडल की सांस्कृतिक समृद्धि ने समस्त देश को चमकृत कर दिया था। कुपाणा का विदेशी शासन भारत व नाग राजाओं द्वारा समाप्त किया गया। यादव गण के पश्चात् कदाचित नागा न ही मथुरामंडल में स्वाधीन राज्य की स्थापना की थी, अतः उनका शासन काल प्राचीन ब्रज के इतिहास के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। नागा व पश्चात् गुप्ता का गौरवगाली गामन आरम्भ हुआ। गुप्त काल भारतवर्ष के इतिहास में 'स्वर्ण युग' के नाम से प्रसिद्ध है, क्या कि गुप्त सम्राटों व शासन में इस देश की राजनैतिक धार्मिक, प्रायिक विद्या विषयक और कला सबकी उन्नति चरमसीमा पर पहुँच गई थी। उनकी राजधानी प्राचीन मगध का प्रसिद्ध नगर पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) थी। परम भागवत गुप्त सम्राटों द्वारा ब्रज की प्राचीन सभ्यता की प्रगति को भी बड़ा धन मिला था। महान् गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने मथुरा के कृष्ण-जन्मस्थान पर एक भव्य मंदिर बनवाया था, जो ५ वीं शताब्दी से ११ वीं शताब्दी तक वामुदेव कृष्ण की उपासना का प्रमुख केन्द्र रहा था और जिसने ब्रज की प्राचीन सभ्यता और धार्मिक भावना के प्रसार में बड़ा योग दिया था। दिल्ली में कुतुब मीनार के निकट मेहरोली नामक स्थल पर एक प्राचीन लीह स्तंभ है जिस पर किसी चद्र राजा की प्रशस्ति प्रकृत है। यह निश्चित है कि वह स्तंभ किसी अन्य स्थल से हटा कर वहाँ लगाया गया है, किंतु वह पहले किम स्थान पर था इसके सबब में विद्वानों में बड़ा विवाद है। हमारा अनुमान है वह लीह स्तंभ वास्तव में 'विष्णुध्वज' है जिसे चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने अपने यशस्वी पिता समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के साथ मथुरा के कृष्ण-जन्मस्थान वाले अपने मंदिर में लगवाया था। इस विषय पर विद्वानों को विचार करना चाहिए। गुप्त शासन के अन्तिम काल में विदेशी बबर हूणों ने मथुरामंडल पर भीषण आक्रमण किया था, जिससे यहाँ की बड़ी सांस्कृतिक हानि हुई थी। हूण लोग पश्चिमाक्षर सीमा और पचनद प्रदेश में भू-आधार करते हुए लूफान की सी तेजी से मथुरामंडल में आये थे और यहाँ भीषण लूट मार कर सब भारत तक बढ गये थे। अतः में मंडसर (मालवा) के वश्य जातीय वीरश्रेष्ठ यशोधमन ने उन्हें पराजित किया था। उसके बाद हूण लोग भारतीय घम और सभ्यता को स्वीकार कर यहाँ बस गये और यहाँ की विभिन्न जातियों में घुल मिल गये थे। हूणों की एक बहुत बड़ी सभ्यता ब्रज सभ्यता को स्वीकार कर मथुरा मंडल में भी बस गई थी। मथुरा नगर के 'मिहारपुरा' मुहल्ला में सम्भवत पहले हूणों की ही वस्ती थी और हूण नेता मिहिर कुल के नाम पर उस मुहल्ला का नामकरण हुआ होगा। हूणों को पराजित करत वाला वीरवर यशोधमन भारत के गौरवगाली विक्रमादित्य की परंपरा में अन्तिम था। उपर्युक्त इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं का विशद वर्णन के अनंतर इस अध्याय के अंत में उस काल की कुछ उत्प्रेक्षणीय उपलब्धियों की समीक्षा की गई है।

तृतीय अध्याय 'मध्य काल' में विक्रम सं० ६०० से १०६३ तक की घटनाएँ लिखी गई हैं। इस काल में भारत की राजनैतिक गति विधियाँ का केन्द्र घाटलिपुत्र (पटना) की अधिसागमा-ममुना क दायाव स्थित वाण्यकुब्ज (कन्नौज) हो गया था और वहाँ का मल्लवंशी शासक हर्षवर्धन प्रतिष्ठित भारतीय सम्राट था। उस काल में चान का बौद्ध यात्री हूएनसांग भारत-भ्रमण के लिए आया था। उसका लिखा हुआ यात्रा-वृत्तांत उस काल की भारतीय स्थिति का जानने के लिए बड़ा उपयोगी है। वह विष्णु यात्री सं० ६२२ में मथुरा भी आया था। उसने मथुरामहल की तत्कालीन स्थिति के संबंध में जो कुछ लिखा है उससे पात होता है कि ७ वीं शताब्दी में 'मथुरा राज्य' एक बड़ी राजनैतिक इकाई था। उसकी सीमाएँ प्रायः बगी थीं, जो भारत के सांस्कृतिक ब्रज' अथवा ब्रजनामा क्षेत्र के अधिकांश भाग का हैं। उस समय का मथुरा राज्य हर्ष के साम्राज्य का एक भाग था अथवा स्वायत्त राज्य, इनके संबंध में विद्वानों में मतभेद है। हर्षवर्धन के पश्चात् इस देश में जो भयंकर युगांतरकारी घटनाएँ हुई थीं, उनमें तीन एसी हैं, जिन्होंने मथुरामहल का भी बड़ा प्रभावित किया था। वे घटनाएँ थी—१ बौद्ध धर्म का पतन और उनकी भारत में प्रसार २ राजपूत राजाओं का उदय और उनके विभिन्न राज्यों का स्थापना ३ इस्लाम मजहब का प्रसार और मुसलमानों का भारत पर आक्रमण। बौद्धधर्म का पतन होने पर पौराणिक (हिन्दू) धर्म का उदय हुआ था और मथुरा उनका प्रमुख केंद्र बन गया था। राजपूतों के विविध राज्यों का स्थापना से मथुरामहल का राजनैतिक महत्त्व तो कम हो गया किन्तु उनका धार्मिक महत्त्व बहुत बढ़ गया था। उसका कारण यह था कि उस काल के राजपूत राजा गए प्रायः सभी पौराणिक धर्म के अनुयायी थे, जिसका मथुरामहल एक बड़ा केंद्र था। मुसलमानों का आक्रमण से इस देश की जो नीपण अधिक, धार्मिक और साम्प्रदायिक छवि हुई थी उसका फल मथुरामहल को सबसे अधिक भोगना पड़ा था। मुसलमान आक्रमणकारियों में महमूद गजनवी पहिला व्यक्ति था जिसने अपनी भयंकर लूट-मार में सं० १०७४ में मथुरामहल का सबतान कर दिया था। उस बबर लुण्ठने अपने महद्वार वाण्यकुब्ज और लूट के सामान में मथुरा के सैकड़ों समृद्धिभागी मंदिर-देवालयों के साथ बृहदा-जमस्थान वाला बहु प्रसिद्ध मंदिर भी लूट कर लिया था जिस प्रायः ६ शताब्दियों पूर्व चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने बनवाया था। उन मंदिरों में भेंट से प्राप्त जा निपुल संपत्ति कई शताब्दियों से एकत्र हाथी भा रहा थी, उस सबको उस विदेशी आक्रमणकारी ने एक ही म्पाट में लूट लिया और उसे वह सैकड़ों ढोंढों पर लाद कर गजनी ले गया। महमूद गजनवी के युद्धाधार आक्रमण और उसकी नीपण लूट का बलन जिन समयमान इतिहास-लेखकों ने किया है, उनमें से एक भल-उल्टी न मथुरा के तत्कालीन और सेनानायक कुलचंद (कुरचंद) का बड़ा आश्रयजनक वृत्तांत लिखा है। उसके कथन में पात होता है कि कुलचंद एक बटान का स्वामी था। उसके अधिकार में विद्याल सना थी और मुल्ह दुा था जो वतमान महाजन के निकट दया हुआ था। उस समय महाजन ने बट-बड़े भवन एवं मंदिर थे और मधुग नगर का मंदिरों मंदिर-घाना भवनों एवं मंदिर-देवालयों का एक विशाल केंद्र हो था। कुलचंद ने मथुरामहल की रक्षा के लिए महमूद गजनवी से बड़ा नीपण मुद्र किया, जिसमें उस की-लुण्ठन का दस्तिया हुआ था। कुलचंद के विषय में जिन उवा के उन कथन के प्रतिष्ठित मोटे अर्थ में लिखे हैं अथवा पुरातात्विक प्रमाण अनी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इन अनुमानों का है, कि मथुरा का प्राचीन यादव वंश का काद वीर पुरुष था, जिसने उन काल में भारत के सर्वोच्च

की थी। कुतुबुद्दीन का विषय में पूरी तरह अनुसंधान होना आवश्यक है, क्या कि मथुरामठल के राजनैतिक इतिहास के लिए उसका बड़ा महत्व है। यहाँ के इतिहास में कृष्ण कालीन प्रथम परवर्ती यादवों और नागा के स्वाधीन राज्यों के पश्चात् कुतुबुद्दीन का स्वामित्व मत्ता का ही उल्लेख मिलता है। महमूद के आक्रमण के पश्चात् मथुरामठल पर बघोज के गाहड़वाल वंशीय राजाओं का अधिकार रहा था। उस वंश के राजा विजयपाल ने मथुरा के श्रीकृष्ण-जमस्थान में महमूद गजनवी द्वारा तोड़ हुए मंदिर के ध्वसावशेषों पर एक नये मंदिर का निर्माण सन् १२१२ में कराया था। विजयपाल के पश्चात् जयचंद बघोज का राजा हुआ था। उसका समकालीन दिल्ली का विख्यात राजा पृथ्वीराज था। उस काल में वे दोनों बड़े बड़े और शक्तिशाली राजा थे, किंतु दुभाग्य से आपस में ही लड़ते रहते थे। उनके शासनकाल में मुहम्मद ग़ोरी का भारत पर आक्रमण हुआ। उसका प्रतिरोध पृथ्वीराज और जयचंद जैसे प्रबल राजपूत राजाओं ने किया था, किंतु पारस्परिक द्वेष और भय कारणों से वे एक-एक कर पराजित हो गये। उसके फलस्वरूप उत्तर भारत के अधिकांश भाग के साथ मथुरामठल में भी मुसलमानी राज्य की स्थापना का मार्ग साफ हो गया। उपर्युक्त सभी प्रमुख घटनाओं के उल्लेख के अनंतर हम अध्याय के अंत में कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियों की समीक्षा की गई है। उसमें हम विषय पर विस्तार में बतलाया गया है कि अनेक शक्तिशाली राजपूत राजाओं के हत हुए भा विदेश से आये हुए मुसलमान आक्रमणकारी यहां किस प्रकार अपना राज्य स्थापित करने में सफल हुए थे।

अध्याय 'उत्तर मध्य काल' से संबंधित है जिसमें सन् १२६३ से सन् १८५३ तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इस अध्याय के आरंभ में मुसलमानी राज्य की स्थापना और उसके विस्तार का वर्णन है। मुसलमानी राज्य के आरम्भकर्ता दिल्ली के सुलतानों का शासन एक प्रकार से 'फौजी और मजहबी तानाशाही' का था जो सत्तार के बल पर तरीयत के अनुसार किया जाता था। सुलतानों का उद्देश्य भारत की इस्लामी राज्य बनाना और यहाँ की हिंदू जनता को बलपूर्वक मुसलमान करना था। मथुरामठल उस काल में हिंदू धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था अतः इस धार्मिक भू-भाग पर उनकी मदद ही शुरू हुई रहा था। यह बड़े सुयोग और सौभाग्य की बात हुई कि दक्षिण के कृष्णोपासक वैष्णव धर्माचार्यों ने उस काल में कृष्ण-भक्ति का वापक प्रचार करने के लिए श्री कृष्ण के लीला ग्राम मथुरामठल में ही अपने केन्द्र बनाये थे। इस प्रकार सुलतानों के बख्तर शासन की परवाह न कर उनकी नाक के नीचे ही उन्होंने अपना भक्ति अभियान चलाया था। उस समय मथुरामठल का तबाना नाम राज प्रथम 'ब्रजमठल' हो गया था जो अभी तक प्रचलित है। उस काल में यहाँ पर विविध धर्मों के अनेक मंदिर-दवालय थे जिन्हें सुलतानों ने एक-एक कर नष्ट कर दिया था और नये मंदिरों के निर्माण पर रोक लगा दी थी। राज के विख्यात कामवन को पहाड़ी पर भगवान् विष्णु का एक अत्यंत बलापूर्णा मंदिर था जिस यादव राजा पल्लवदामा ने सन् १२५० के लगभग बनवाया था। उस सुंदर दवालय को सुलतान इल्तुमिश ने क्षतिग्रस्त कर भ्रष्ट किया और फिर फौराज तुगलक ने उसे धरा सायी कर उसके ममाल से एक मस्जिद बनवाई थी। मथुरा के अगिकुंडा घाट पर बने हुए प्राचीन मन्दिर का अजाउद्दीन खिलजी की धाना में सन् १३५४ में तोड़ा गया और उसके स्थान पर भी एक मस्जिद बनवा दी गई। मथुरा के श्रीकृष्ण-जमस्थान पर बघोज के राजा विजयपाल ने सवद

१२१२ में जो मंदिर बनवाया था, उस फीराज तुगलक ने शक्ति त्रिपा और किंग निकदर लानी ने स० १५७३ में उस पूरतया नष्ट कर दिया था। दिल्ली के मुलतानों में निकदर लानी का मजहबी अत्याचार करने बड़ा हुआ था। उसने ब्रज के हिंदुओं के मनों धार्मिक कृत्यों पर पाबनी लगा दी थी; वहाँ तक कि उनकी छात्रा से हिंदुओं का अनुना-स्नान करना और वहाँ के पाठों पर बात बनवाना तक बंदिश था। मथुरा का काजी अपने कूर नीतियों के साथ विश्रामघाट पर हटा रहता था। वह स्नानाधिया का गब कर उन्हें मुलतान बनन के लिए बाध्य करना था। उसके जमींदार के कारण ब्रज के हिंदुओं में बड़ा क्रमताप था। नानाजी दूत बल्लभास के अनुसार निवाक सप्रशय के आचाद थी बगब कारनीगे मट्ट न और बल्लभ सप्रशयी वाता न अनुमा थी बल्लभाधाय न निकदर लानी का उस मजहबी आनागाही के विराम करने का माहस किया और अपने अनुब धाम बन से उसम सफलता प्राप्त की थी। रमा गान हाता है, उन दोनों महाभारत के सम्मिलित प्रयास में उस काल में ब्रज के हिंदुओं का वह बड़ दूरा हुआ था। निकदर लानी के गायन काल में ही थी बल्लभाधाय जी न ब्रज का गिरिराज पगड़ी पर धोनाय जी का नया मंदिर बनवाने का उपक्रम किया, जो उस काल की अभावस्थिति में बड़ माहम का काम था। मुलतानों के कठोर शासन के पश्चात् मूर पठाना और मुगलों का उदार गानन धारन हुआ था। उन समय दिल्ली का अपना भारा में राजधाना कामम की गद जिससे बल्लभन के धार्मिक महत्व का साथ हा साथ उसका राजनीति महत्व भी बड़ गया था। मुगल सम्राट अकबर न हिंदुओं पर लगा हुए मुलतानी काम की सभी मजहबी पाबनियों समाप्त कर दी थी। उसने ब्रज की जनता का अपने विरवास के अनुसार धर्म-कर्म करने की पूरी स्वाधीनता प्रदान की और गा-बय का बंद कर दिया। उसक शासन काल में ब्रज में कई गजाली पश्चात् नव मंदिर-दशालम बनवाय गये थे। उसने महा की विद्याओं और कलाओं की उन्नति में भी बड़ा योग दिया था। इस प्रकार अकबर का गायन काल ब्रज सत्कृति के लिए स्वर्ण काल सिद्ध हुआ था। उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण उदार नीति न हिंदुओं के मन की ऐसा माह किया था कि वे मुगल साम्राज्य के निमाग में मुलताना से भी अधिक सहायक सिद्ध हुए थे। जहाँ राजा मारगिह ने अपने बल-विराम न अकबर के साम्राज्य का विस्तार किया, वहाँ टाडरमन के बुद्धि-योग ने उसे प्रगाननिक सुखता प्रदान की थी। अकबर के पश्चात् जहाँगीर और शाहजहाँ के गानन काल में कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ प्राप्त अकबर की नीति का ही पालन किया गया था, जिससे ब्रज सत्कृति का उत्तरात्तर विकास हुआ गया। जब औरंगजेब मुगल सम्राट हुआ, तब उसने अपनी मजहबी कट्टरता के कारण अपने पूर्वजों की उदार नीति के प्रभाव पर विरट धारण किया था। उसके गानन काम में ब्रज में फिर मजहबी अत्याचार हाव लगे और महा की हिंदु जनता का मताया जान लगा। औरंगजेब न निकदर लानी की भांति ब्रज के हिंदुओं पर बड़ी पाबनिया लगा कर उन्हें अपनी इच्छानुसार धर्म-कर्म करने से बंदिश कर दिया था। उसने गा-बय करने की सुनो छूट देनी, और मुलतानों पर अमानवीय उज्रिया कर लगा दिया और मन्दिर-देवालय नष्ट करने का परमान जारी किया। उसके आदेश से ब्रज के मनों विद्यालय मन्दिर-देवालय नष्ट भ्रष्ट बिन्द जाने लगे। उन भीषण अत्याचारों से सभी हाव ब्रज के अन्तर्गत धर्मोपाय अपने देन विरट और परिवर के साथ ब्रज का छोड़ कर हिंदु गजालों के गदों में जा कर बन गये थे। उसी काल में बल्लभ सप्रशय के उपाम्य धोनाय जी तथा अपने दल स्वयं गोवधन और गोमन से हटाय गये, जिससे ब्रज का व मृद्धिगामी सामूहिक केन्द्र धाम उन्नत हो-

सुनसान हो गये थे । श्रीरघुदेवी शासन में ब्रज सत्सृष्टि की एंगी भारी धनि हुई कि फिर उसका उत्तरात्तर हलाम ही होता गया । परवर्ती मुगल सम्राट मुहम्मद ग़ाह व शासन काल में जब जयपुर का सर्वाई राजा जयसिंह स० १७७७ स० १७८३ तक भाग्य प्राप्त का सुखदार रहा था, तब उसका राजकीय प्रभाव स ब्रज की क्षिणही हुई सांस्कृतिक स्थिति में कुछ सुधार हुआ । उनके उपरांत स० १८१३-१४ में अहमद ग़ाह अफ़ग़ाना नामक एक अफ़ग़ान आक्रमणकारी ने ब्रज में भयंकर लूट मार कर यहाँ पुनः सबका का वातावरण उपस्थित कर दिया था । उनका ऐसा दुष्परिणाम हुआ कि हलामो-मुवी ब्रज सत्सृष्टि फिर नहीं बन सका । मुसलमानी शासन के अत्याचारों ने ब्रज की कृषिजीवी जाट जाति को एक सैनिक संगठन में परिवर्तित कर दिया था । इस जाति ने सूरज प्रताप और जवाहरसिंह जैसे वीर पुत्रों को जन्म दिया, जिन्होंने ब्रज में स्वाधीन राज्य के संचालन के साथ ही साथ मुग़ल की राजधानी दिल्ली पर आक्रमण कर अपने वीर्य का डंका बजाया था । जाट राजाओं में अत्याचारों की रीति तो थी, किन्तु उनमें राजनैतिक सूक्ष्म-बुद्धि और उदात्त सांस्कृतिक चेतना की कमी थी, जिससे वे ब्रज के सर्वांगीण निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके थे । फिर भी उन्होंने डाल भरतपुर और गावघन में जो सुंदर भवन बनवाये और ब्रजभाषा कवियों का संरक्षण किया उनसे ब्रज के स्थापत्य और काव्य का बड़ा प्रोत्साहन मिला था । ब्रज की संस्कालीन स्थिति पर जाटों के अतिरिक्त भरहठों का भी बड़ा प्रभाव पड़ा । सुप्रसिद्ध भरहठा सनापति महादजी सिंधिया कृष्णोपासक होने के साथ ही साथ ब्रज सत्सृष्टि का भी बड़ा प्रेमी था । उसने अपनी वीरता और उद्विग्नता से मुगल सम्राट शाह आलम को अपने संरक्षण में लेकर गिल्ली के लाल किले पर भरहठों का भगवा झंडा फहरा दिया था । किन्तु पंजाब की भद्रदक्षिणता और प्रधान भरहठा मरहठों की पारस्परिक ईर्ष्या ने वह न तो भरहठ राज्य का कोई बड़ा हित साधन कर सका और न ब्रज सत्सृष्टि में पुनरुद्धार में ही सहायक हो सका । मुसलमानी शासन के शक्तिहीन हो जाने पर उस काल का प्रगततम भरहठा शक्ति को छत्रपति शिवाजी के आदर्शानुसार भारत में हिंदू पातशाही की स्थापना करने का स्वल्प सुयोग मिला था । किन्तु भरहठों सरदारों की शून्य से विदेशी अंगरेजों का भारत में जन्म जाने का अवसर मिल गया और यह दश फिर पराधीनता के बंधन में बंधन को विरक्त हुआ था । उस काल की बहु संरक्षक उपलब्धियों के कारण जहाँ ब्रज सत्सृष्टि का चरम विकास हुआ, वहाँ कतिपय अभावों के कारण उसका गोचनीय हलाम भी होन लगा था । ब्रजवासियों में धर्म, साहित्य और कला के प्रति असीम अनुराग था, किन्तु जाटों के अतिरिक्त यहाँ के अन्य लोगों में वीरत्व का भावना का प्रायः अभाव रहा था । ब्रज के धर्माचार्यों और भक्त कवियों ने लोगों में उच्चकोटि की धार्मिक चेतना और कलाभिरुचि जाग्रत करने में जितना उत्साह दिखाया था, उसका शतांग भी यदि वे अत्याचारियों का विरोध करने की प्रेरणा देने में फ़िलहाल, तो ब्रज सत्सृष्टि का वसा भीषण हलाम न होता । ऐसा जान पड़ता है उस काल के धार्मिक नेता 'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रं शांतिं चित्ता प्रसूते — अर्थात् शस्त्रों से रक्षित राष्ट्र में ही शांति का चिंतन संभव है—' जैसे प्राचीन नीति वाक्य का मूल गये थे । यह बड़े आश्चर्य की बात है कि उस काल में निर्मित ब्रजभाषा के विशाल वाटमय में आततायियों के अमानुषिक अत्याचारों के विरोध की भावना तो दूर रही, उनके प्रति आक्रोश तक का अभाव दिखाई देता है । इस अभावे में उस काल की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं के विवेचन के साथ उनकी उपलब्धियों और उनके अभावों की भी समालोचना की गई है ।

पंचम अध्याय 'भ्रातृनिक काल' में स० १८८३ स० २०२२ तक की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इसमें पहले अंगरेजों कंपनी द्वारा ब्रजमंडल पर अधिकार कर यहाँ शासन कायम करने अंगरेजी सत्ता के विरुद्ध भारतीयों के प्रथम विद्रोह में ब्रजवासियों का योग देने और कंपनी राज्य के समाप्त होने पर ब्रिटिश शासन को स्थापना हान का सामना करना पड़ा है। फिर ब्रज के जन जीवन पर उन घटनाओं की जो भली-बुरी प्रतिक्रिया हुई उसका संपिप्त वर्णन किया गया है। उसके उपरान्त उस काल की ब्रज की धार्मिक दृष्टि और सांस्कृतिक अवस्था का कारण बतलाते हुए उन समृद्धि-गाला भक्तजनो सामूहिक एवं धार्मिक महापुरुषों तथा धर्म प्राण विद्वानों का उल्लेख किया गया है, जिन्होंने ब्रज का सत्कारना स्थिति को सुधारने का भारी प्रयत्न किया था। ब्रिटिश काल में जब यहाँ शांति स्थापित हो गई, तब विभिन्न स्थानों के समृद्धिवासी धार्मिक जन ब्रज की पावन भूमि में निवास करने के लिए उसी प्रकार आये थे जिस प्रकार वे कुछ गतावधि पूर्व के शांति काल में आते रहे थे। एम. महानुभावा में मन्त्री गोकुलदास पारित्य, लाला बाबू नंदकुमार वसु, गान्धु दनलाल (तलित विशारी), राजा पटनीभल, सठ जयनारायण-लक्ष्मी नारायण पोद्दार, राजपि बनमाली बाबू और भया बलवतराव मिथिया के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा निर्मित मंदिर दवालय तथा उनके विविध धार्मिक कार्यों ने ब्रज के सांस्कृतिक पुनरुत्थान में बड़ा योग दिया है। श्री गोकुलदास पारित्य द्वारा मथुरा के जिन सेठों की परंपरा प्रचलित हुई, उनके द्वारा निर्मित श्री रंग जी और श्री द्वारकाधीश जी के मंदिर ब्रज की धार्मिक भावना के प्रमुख केन्द्र हैं। ब्रज के अन्य सांस्कृतिक महापुरुष ज्यो० अमरलाल-माधवलाल दही स्वामी विरजानंद, गो० मधुसूदन जी-राधाचरण जी तथा गोपाललाल गस्वामी ने ब्रज संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में अपना महत्वपूर्ण योग दिया था। अंगरेजों कंपनी और ब्रिटिश राज्य के शासन काल में ब्रज में जो अंगरेज अफसर रहे, उन्हें ब्रज संस्कृति में कोई प्रेम नहीं था, अतः वे इसका प्रगति के लिए प्रयत्नशील नहीं हुए। उनमें एक श्री ग्रावर्न ही अपवाद है जो ब्रज के सौभाग्य से यहाँ का जिलानीश होकर आया था। वह निश्चय ही ब्रज संस्कृति के लिए बड़ा सहायक सिद्ध हुआ था। इस अध्याय के अंत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध राष्ट्रीय आंदोलन का गति विधि और महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता प्राप्ति के उत्पन्न के साथ ब्रज के सांस्कृतिक निर्माण की वर्तमान स्थिति और भविष्यत् समाचना पर संक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। स्वाधीन भारत के वर्तमान शासक का जिनका ध्यान देश के आर्थिक पुनर्निर्माण का और है, उनका सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भार नहीं है, फिर भी हम आशा है कि वे ब्रज संस्कृति के महत्व को समझ कर यहाँ का सांस्कृतिक प्रगति की भी समुचित व्यवस्था करेंगे। कारण यह है कि किसी भी देश का पुनर्निर्माण उसके सांस्कृतिक अस्तित्व के बिना अधूरा ही माना जाता है और इस संबंध में ब्रज संस्कृति बड़ा महत्वपूर्ण योग दे सकती है। इस अध्याय में वर्णित यहाँ की महत्वपूर्ण घटनाओं के उल्लेख के साथ 'ब्रज का इतिहास' नामक यह दूसरा खंड समाप्त हुआ।

इस भाग के अंत में विस्तृत अनुक्रमणिका है, जिसमें 'ब्रज संस्कृति की भूमिका और 'ब्रज का इतिहास' नामक दोनों खंडों की पृथक् पृथक् नामानुक्रमणिकाएँ और अध्यानुक्रमणिकाएँ हैं। यह सार्वजनिक की सुविधा के लिए बड़े परिधम से प्रस्तुत किया गया है। दोनों खंडों में यथा स्थान अनेक चित्र हैं, जिनसे इस भाग की उपयोगिता बढ़ गई है।

इस भाग की रचना मैंने जिन ग्रंथों से सहायता ली है उनके नाम का उल्लेख यथा स्थान और अंत में दी हुई महायक ग्रंथों की सूची में किया गया है। मैं उनके विद्वान लेखकों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। भारत कला भवन वाराणसी और पुरातत्त्व सप्रहालय मथुरा से मुझे अनेक बनवाने के लिए चित्र छापने के लिए अनेक और अध्ययन के लिए अनेक ग्रंथ प्राप्त हुए हैं जिनके लिए मैं उनका अध्ययन आदरणीय राय कृष्णदास जी और डा० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी का अत्यंत आभारी हूँ। इस ग्रंथ में मुद्रित कुछ चित्रों का अन्वेषण गा० ब्रजरमण जी मथुरा, गो० माधवराय जी पोरबन्दर, अधिवारी ब्रजवल्लभ गणग जी वृन्दावन, श्री गोपासदाम जी भालानी इंदौर, वैद्य गोपालप्रसाद जी बौदिक गावधन, गो० ललिताचरण जी वृन्दावन और कन्हैयालाल जी मथुरा में प्राप्त हुए हैं। इनके लिए मैं उक्त सज्जनों का अत्यंत आभार मानता हूँ। श्री लक्ष्मणगिरि जी शास्त्री से प्राप्त के दुर्लभ ग्रंथ 'मथुरा-ए-हिस्ट्रिकल मेमोयर' (तृ० स०) की सुंदर प्रति और श्री बालमुकुंद चतुर्वेदी से ब्रजयात्रा संबंधी कुछ पुस्तक एवं उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त हुईं, जिनके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देना हूँ। मैं सबसे अधिक आभारी विद्वद्धार डा० वासुदेव गणग जी अग्रवाल और वसन्तमयण राय कृष्णदास जी का हूँ जिन्होंने इस ग्रंथ के लिए 'प्रस्तावना' और 'दो गन्ध' लिखन की कृपा की है। डा० अग्रवाल जी ने मेरी अनेक श्लेषावस्था में गया पर लेट हुए ही अपने वक्तव्य को निम्नवाया था। 'उनके प्रति अनुचित कृतज्ञता प्रकट करना किसी प्रकार भी संभव नहीं है। जिन ग्रंथों सज्जनों से मुझे इस भाग की रचना में किसी भी प्रकार की सहायता मिली है और जिनके नामों का स्मरण इस समय मुझे नहीं हो रहा है उन सबके लिए मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। अमल में यह ग्रंथ बहुसंख्यक विद्वानों की विद्वत्ता का ही प्रसाद है, जिसे वितरण करने भर का काम मैंने किया है। अपने कथन के आरम्भ में मैं इस ग्रंथ की रचना के पूरे हो जाने पर आत्म सतोष व्यक्त किया है, किंतु वह तब तक अधूरा है, जब तक इस ग्रंथ का सभी खंड छप कर प्रकाशित नहीं जाते हैं। किसी भी बड़े ग्रंथ के मुद्रण और प्रकाशन का कार्य उनकी रचना से कम अम-साध्य नहीं होता है। यह हृदय की बात है कि गेय खंड की छपाई का काम भी तेजी से हो रहा है और भगवान् की कृपा से वे शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

साहित्य सस्थान, मथुरा।

आषाढ शु० १५ (ध्याम पूर्णिमा), स० २०२३

—प्रभुदयाल मोतिल

प्रस्तावना

मर अभिन्न मित्र श्री प्रभुश्याम जी भीतल सच्चे सपनों में ब्रजवानों हैं। उनका जन्म मथुरा पुरी में हुआ है और उनके स्वामी-श्रवण में ब्रजभूमि का आदर्श बना हुआ है। उन्होंने ब्रज के वृत्त साहित्यिक इतिहास की रचना का गुप्त सक्त्व किया और कई वर्षों के श्रमक परिश्रम से इस पूरा कर डाला। यह कार्य बहुत बड़ा था और अब तक किसी भी व्यक्ति ने इस करने का साहस नहीं किया था। मुझे हर्ष है भीतलजी ने श्रम ही इस महान् कार्य का पूरा कर लिया। ब्रज संस्कृति से संबंधित यह ग्रंथ कई खंडों में समाप्त हुआ है। इसमें हम ब्रज का ऐतिहासिक धार्मिक, कला विषयक, साहित्यिक और लोक जीवन संबंधी विवरण मिलता है। इस प्रकार यह ग्रंथ ब्रज का विवरण ही बन गया है। इस वृत्त ग्रंथ के प्रथम दो खंड—ब्रज संस्कृति की भूमिका और ब्रज का इतिहास—इस भाग में प्रकाशित हो रहे हैं। साथ चार खंड—ब्रज के धर्म-संप्रदाय, ब्रज की कलाएँ, ब्रज का साहित्य और ब्रज का लोक संस्कृति का श्रम भागों में अथवा समय प्रकाशित होंगे।

ब्रज संस्कृति के अनुपम महत्व का अत्यंत दीर्घ कालान्तर परंपरा रहा है। ब्रजभूमि और मथुरा पुरी का किसी समय का दिव्य रूप था उनका लगभग ढाई सहस्र वर्षों का इतिहास भी पुरातत्व और साहित्य की सम्मिलित मायों से उपलब्ध है। ऐसा सौभाग्य और गौरव भारत के किसी श्रम स्थान का प्राप्त नहीं है। ऐसा देश में ब्रजभूमि के सवायाण परिवर्ष के लिए भारतीय जनता का उन्मुख होना स्वाभाविक है। यह उन्मुखता विगत वर्षों में उत्तमतर बढ़ती रही है। ब्रज के इतिहास में विकास और ह्रास तथा उत्थान एवं अवनति के अनकाल हुए हैं किन्तु इधर हमकी बहुमुखी उत्थिति का युग पुन आया है। ब्रज संस्कृति के भयंकर और प्रजन्मा के धार्मिक साम्य के प्रति लागू की जिज्ञासा में वृद्धि हुई है। मथुरा के संग्रहालय का जा विकास और विस्तार हुआ है उनका यंग दग-विंग में निरंतर बढ़ रहा है। कटरा कसबदेव या कृष्ण-जन्मभूमि के उद्धार का भी प्रचुर प्रयत्न हो रहा है। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के विंगिट ग्रंथ का भी निदान आवश्यकता थी। ईश्वर की कृपा से इनकी सामयिक पूर्ति भीतल जी के सत्प्रयास द्वारा हुई है।

प्राचीन परिभाषा के अनुसार जनपद के दो भाग हो सकते हैं—एक नगर या पुर और दूसरा उनके चारों ओर ग्रामों का मंडल या राष्ट्र। इस प्रकार मथुरा पुरी गुरुन जनपद (प्राचीन ब्रजमंडल) का राजधानी था। उनकी जनपदीय सीमा चौरासी काम का वहीं जाती है जो आज तक वहीं यात्रा के अंतर्गत है। मथुरा पुरी की अंतरगृही यात्रा छोटी परिक्रमा के रूप में प्रचलित है।

मथुरा का आदि कालीन सन्निवेश मथुरा के दक्षिण तट पर हुआ था। कहते हैं, उसमें पूर्व मधुवन (वर्तमान महोली) में तबलू नामक समुद्र ने कुछ गुफाएँ बनाई थीं और वही वह निवास करता था। देवा की प्रायश्चना पर राम ने अपने छाट भाई गन्धर्व को तबलूमुर का उपद्रव शांत करने के लिए वहाँ भेजा और उन्होंने उसको परास्त कर मथुरा नगरी का सन्निवेश किया, जो 'देव निमिता पुरी' बनी गई। वाल्मीकि रामायण में इसका उल्लेख हुआ है। मथुरा सन्निवेश की एक भौगोलिक विशेषता है, और वह यह कि मथुरापुरी प्राच्य और उदाच्य के बीच का दहली-द्वार थी। मध्य देश के साथसाथ और व्यापारी पूर्व से पश्चिम की ओर यात्रा करते समय मथुरा के भाड़ागारिका से संपर्क करते हुए आते-जाते थे। उसमें मथुरा नगरी का बाह्य प्रभाव बढ़ गया था। किंतु मथुरा की जड़ कुछ लोभ। सबसे बड़ा प्रभावोपाय योंग यह था कि यहाँ भगवान् श्री कृष्ण का जन्म हुआ। वह महाभारत के युग की घटना है। उपलब्ध प्रमाणों से ज्ञात होता है कि कृष्ण-जन्म के कारण मथुरा का यह उत्तर भारत में सर्वत्र फैल गया था। सच तो यह है कि काल-क्रम से मथुरा पुरी भागवत धर्म का महान् केन्द्र बन गई और तब इसका यह न केवल उत्तर भारत में बल्कि दक्षिण के पल्लव वंशीय राजाओं के राज्य में भी व्याप्त हो गया। वहाँ तमिल भाषा के सगम साहित्य में भगवान् कृष्ण और गोपिया के साथ उनके नृत्य-गान के उत्सव पाये जाते हैं। तमिल भाषा के गिलिप्पाधिकारम्बु ग्रंथ में इन विषयों का बहुत अच्छा वर्णन हुआ है।

उत्तर भारत में मथुरा के वैष्णव धर्म का प्रभाव बड़ा सी मील के घेरे में व्याप्त था। पश्चिम की ओर दक्षिण-पूर्वी राजस्थान की मध्यमिका नगरी में बामुदेव और सक्षपण भगवान् कृष्ण-वल्लभ की पूजा का एक केन्द्र स्थापित हुआ, जिसे 'नारायण बाटक' भगवान् नारायण का बाड़ा नाम दिया गया। सौभाग्य से वह स्थान आज भी सुरक्षित है। उसके बीच में हटा के मध्य पर पत्थर की पूजा-शिला और चारों ओर बड़े-बड़े पत्थरों को जोड़ कर बनाई हुई एक प्रकार का दीवार भी आज भी है। ऐसे ही मथुरा से दक्षिण पथ की जाने वाले भाग पर प्राचीन राजधानी विदिशा के निकट भगवान् विष्णु के मंदिर और गण्डवज स्थापित किये गए जिनके अवशेष अब भी विद्यमान हैं। इस प्रकार विक्रम से दस शती पूर्व के काल में मथुरा का प्रभाव बाल मूल्य की भाँति निरंतर बढ़ रहा था। उसी समय जब और बौद्ध धर्मों के अनुयायियों ने भी मथुरामंडल में अपने केन्द्र बनाये थे जहाँ उन्होंने स्तूपों एवं प्रासादों का निर्माण किया था। उनके आदोलन का प्राण भी भक्ति धर्म था, किंतु उसका मूल रूप पत्थर की प्रतिमाओं द्वारा प्रकट किया गया। पापण शिल्प का वरदान पाकर मथुरा का बभ्रव नय रूप में जगमगाने लगा। उस समय की बनाई हुई सहस्रों मूर्तियाँ आज तक सुरक्षित हैं। इन शिला पट्टों पर मथुरा के इतिहास की अमर कहानी अंकित है जिसका उद्घाटन इस आधुनिक इतिहास के कला खंड में किया गया है।

भगवान् कृष्ण समस्त विश्व को प्रकाश देने वाले नित्य दीपक हैं। उन्हें नान-मूल्य कहना भी उपयुक्त होगा। उनका गीता गात्र मानव के लिए कम का अमर संदेश देता है। भगवान् बुद्ध भी एशिया खंड में मान-ज्याति का विस्तार करने वाले महापुरुष थे। उनकी मूर्ति की कल्पना भी सर्वप्रथम मथुरा में ही हुई और यहाँ से वह एशिया के अनेक देशों में फैल गई। मथुरा के गिलिप्पा ने बौद्ध जैन और ब्राह्मण धर्मों की नित्य मूर्तियों का निमाण कर भारतीय

कला को एक नया माह दिया था। मथुरा के बौद्ध अभिलेख इस बात का साक्ष्य हैं कि विक्रम की प्रारम्भिक दा गतिपा के महान् धार्मिक आंदोलन के अंतर्गत महास्तिवादी और महासधिका आचार्यों ने मथुरा की धार्मिक प्रेरणा का अपनी शक्ति में भर दिया था। इसी प्रकार जैन सभ में भी अपने गण, कुल और शाखाओं के रूप में मथुरा का अपना विशिष्ट कायनेत्र बनाया था। उनका व्योरा मथुरा में उपलब्ध जैन मूर्तियों का चरण-चौकिया के समान मिलता है। ब्राह्मण धर्म के भागवत आंदोलन का तो गिरामणि चन्द्र ही मथुरा में बना था, जहाँ भक्ति धर्म के व बोज अकुरित हुए, जिनसे गुप्त युग का धार्मिक स्वप्न प्रकट होकर सहस्रहान लगा। उस अमीकार के मध्यम के चद्रगुप्त विक्रमादित्य जैसे गुप्त सम्राट अपने का 'परम भागवत' कह कर गीरबान्वित हुए थे। मथुरा के कृष्ण-जन्मस्थान पर चद्रगुप्त ने विष्णु का एक महाप्रानाद बनवा कर भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी अज्ञातमि अर्पित की थी। विक्रम का प्रथम सत्ता के लगभग पाण्डुपुत्र सप्रणय के आचार्यों ने भी मथुरा का 'नैव धर्म का एक बड़ा क्षेत्र बना कर यहाँ 'नैव मूर्तिया और मंदिरों की स्थापना की थी। वह आंदोलन गुप्त काल में और भी बलवती हो गया था।

इस प्रकार मथुरा का पुरातन सामग्री से यह भली भाँति प्रकट होता है कि भारत के धार्मिक क्षेत्र में ब्रज न भौतिक निर्माण का किनता बड़ा काम किया है। यहाँ के चारों धार्मिक सप्रणय—जैन, बौद्ध, कृष्ण और 'नैव—ब्रज के सांस्कृतिक स्वम्भिक की चार भुजाएँ थी। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि ब्रज के धार्मिक महा सुमर की जल-धाराओं का स्रोत मथुरा के धर्मप्राण नागरिकों का हृदय था, जिनकी परंपरा ब्रज में सदैव बनी रही। वही धर्मप्राण हृदय कृष्ण भक्ति के रूप में विकसित हुआ था। विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी में कृष्ण धर्म के धर्म आचार्यों और सत्तों ने ब्रजभूमि में अपने चन्द्र बना कर कृष्णप्राप्तना के जिन नवीन भक्ति-धर्म का उपदेश दिया, उसकी कथा बहुत विज्ञान है। भगवान् श्रीकृष्ण की गान्धर्व-वृंदावन की विविध लीलाओं का चन्द्र में रम्य कर उनके दिव्य सात्त्विक धनु का विकास धीमद्भागवत में पहिल ही पूणता की प्राप्त हो चुका था। फिर उनके साथ भक्तिरम का संयोग भी पूरा मात्रा में आ गया था। मध्यकालीन आचार्यों और सत्ता ने उस भागवतीय भक्ति का नय रूप में इतना अधिक विकसित किया कि ब्रज की महिमा समस्त भारतवर्ष के जन-मानस में व्यापक रूप से फैल गई। श्री बल्लभाचार्य और श्री चैतन्य महाप्रभु ने कृष्ण-भक्ति के उस स्वरूप का महाधिक साक्षात्कार किया था। श्री बल्लभाचार्य द्वारा प्रेरित मुरदास और परमानन्ददास ने तथा श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रेरित सनातन गान्धामा और रूप गान्धामी ने साहित्य और जीवन के माध्यम में ब्रज में हरि-भक्ति की अमृत-धारा का प्रादुर्भाव किया। फिर तो उनके अन्य महायोगियों के साथ ही माधव निवाक्य, माध्व, राधावल्लभ और हरिदास आचार्यों एवं भक्त महानुभावों ने धर्मोपदेशना और भक्ति-साहित्य का दिव्य स्रोत हो बहा दिया। उस काल में राजा साधना का पूरा विकास हो चुका था। उनके माध्यम से एक भार चंडीदास और विद्यापति ने, दूसरे भार नरसी महता और मारादास ने तथा बीच में तुलसीदास ने भक्ति धर्म की धारा को सोन के घाट पर प्रबल बग में प्रवाहित कर दिया था। उसका कारण ब्रजभूमि में लेकर राक्षस-गुजरान तक की जनता भक्ति रम में गरावार हो गई थी। उसका अधिकार श्रेय ब्रज के धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन का है।

यद्यपि यमुना और गोबधन वाली ब्रज का सीमा परिमित है, तथापि भक्तों का आदर्श ब्रज लाव' की सीमा का कोई अंत नहीं है। उन्होंने तो एक नया स्वर्ग ही रच लिया है जिस गोलाब' कहा जाता है। जिन्होंने हृदय में भक्ति का रस है और जो उसकी मरमता का अनुभव करते हैं, उनका लिए ही ब्रज का वास्तविक सत्ता है—उनके लिए ही ब्रज का सच्चा माधुर्य है। जिस प्रकार भगवान् कृष्ण ने लीला—बसु का अनंत रूप है, जिसका रसास्वादन प्रत्येक भक्त अपनी भावना का अनुसार करता है, उसी प्रकार भगवान् के गालाब की कल्पना भी अनंत है। मधुरा, वृंदावन, गोकुल और गोबधन सहित नमस्त वज्रमणि इन लाव' में उनका स्थूल प्रतीक है। कृष्ण मानव थे—एसा मान कर उनके ऐतिहासिक चरित्र की खानगान करने वाले लोग का एक दृष्टिकोण है। वैष्णव धर्म के विविध आचार्यों का उनके संबंध में दूसरा दृष्टिकोण है। दाता की अपनी—अपनी सीमाएँ हैं किन्तु कृष्ण ही नहीं बुद्ध का भी साक्षात्तरवादी स्वरूप में ही मन्त्री सरगता है। ऐतिहासिक घटना विजडिन हानी है, किन्तु साकोत्तर लीला का कोई अंत नहीं होता है। वह नित्य प्रबधमान् रहती है और मानव का हृदय उस भक्ति-रस में माचता रहता है। गोबधन—धारण एक लीला है इन्द्र का दप-भग भी एक लीला है। इह इतिहास की घटनाएँ मान कर इनका अवपण करना बुद्धि का पराभव होगा।

ब्रज के सांस्कृतिक इतिहास का मागापाग अनुसंधान जिनामु पाठक के हृदय में एक विशेष प्रकार की तयारी की अपेक्षा रखता है। उससे स्थूल और सूक्ष्म, प्रत्यक्ष और पराग—दोना ही सद्भा का सुनने की क्षमता चाहिए। कृष्ण मानव हैं—यह सत्य है और कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् यह भी सत्य है। किसी पक्ष को माना जाय किन्तु उसमें रस का अभाव नहीं होना चाहिए। तभी पाठक के अंतःकरण को उनका लाभ मिल सकता है। इस युक्ति की संप्राप्ति ही ब्रज सत्त्विक के मम का खोलने की कुंजी है या उस जानने का दृष्टिकोण है।

अंत में मरी इश्वर से प्रार्थना है कि लखन में हृदय-बल और बाहु-बल की वह शक्ति प्रक्षुब्ध रहे, जिससे इस सांस्कृतिक इतिहास का समस्त काय पूरितया सिद्ध हो सके।

कानी हिंदू विश्वविद्यालय,
चन्न शु० ६ (रामनवमी) २०२३ वि०

—वासुदेवशरण

दो शब्द



यदि आधुनिक भाषा में कहें तो सवार क महात्म्यम पुरुष और यदि पारंपरीय भाषा में कहें तो पूरा ब्रह्म पुरुषात्तम भावात् श्री कृष्ण का जन्म-भूमि होने के कारण मथुरा (जिसमें समूची ब्रह्म भूमि का घटनाव है) सवार की पुण्यतम भूमि है। नावात् न जा प्रवर्तन किया, जिसका सबसे प्रामाणिक रूप हम श्रीमद् भगवद्गीता में मिलता है उसकी विद्युत्ता यह है कि उसमें ज्ञान, कर्म और भक्ति का ऐसा जूक समन्वय है जो अन्य किसी भी प्रवर्तन में नहीं पाया जाता। भगवान् ने उस धर्म-मन्थारन द्वारा प्राणा का मन्-अमन् का विवेक अपने अपने 'स्वकर्म' में अनिरति और उस अनिरति के रूप में नावात् की धन्यवना करके समिद्धि की—मान का—प्राप्ति का धरानिष्ठ मृदुओं के लिए, श्री सामारिक विषया में धनामक्ति पूर्वक नावद्-भक्ति द्वारा निवाण-प्राप्ति निवृत्ति-प्राप्ति का लिए उपदिष्ट किया। उन्होंने युधिष्ठिर द्वारा कुरु-राज्य में दूरी धर्म की प्रतिष्ठा करा कर इनका प्रवर्तन वहां भी किया जिसकी चर्चा जातका में कुरु-धर्म नाम से पाद जाती है जहां राजा स नकर बसा नव-समाज की उच्चतम स्तर वाली प्रजा से लेकर निम्नतम स्तर की प्रजा तक—प्राने अपने स्वयं में निरत है और उनके द्वारा अम्युदय (ऐहिक समिद्धि) और निधेयम् (पारमाथिक समिद्धि) प्राप्त करती है।

स्वयं कृष्ण के अपने जन्म में मथ्यान् मादवा का सान्वत नामक थापन भी उनका यह धर्म ग्रहण किया, इसी कारण इनका नाम सावत धर्म भी मिलता है। जब कृष्ण के तीता-विन्दार के उत्तरात मादव, द्वारका से पुन मथुरा लौट आए तो मथुरा इन धर्म का कन्द्र हुआ। यूनानी लवका बार वृताता के जा छिद्र-मित्र भग प्राप्त हैं उनसे पता चलता है कि ई० पू० ५-६ शती में मथुरा नगरी हा इस धर्म का कन्द्र थी। फिर ता जैन और बौद्ध धर्मों ने भी मथुरा का धरना कन्द्र बनाया। नारतम आय धर्म के विभिन्न सप्रज्ञापी की यही मन-वयामक प्रवृत्ति रही है कि उनका केंद्र बहूना एकत्र रहे हैं, कागा प्रयाग अयाध्या गया आदि इनके उदाहरण हैं, बाबु पुराण के एकही म्मारह्वें अम्याय में उमुक्त उम्मख है कि वहां का अरवतम वृष बह्मा, विष्णु, मरुग और बाबि-वृष इन चारों रूपों में पूजित होता था।

निजाम कनिष्क के समय में मथुरा में बौद्ध धर्म का अमूल्यपूर्व अम्युदय हुआ। विजेता गज राज का भारतीय धर्म न विजित बना लिया और राजधर्म होने के कारण उसने मथुरा में उन्मृष्ट कलात्मक रूप धारण किया किन्तु कृष्ण-धर्म भी अटन बना रहा। कनिष्क के पीन का नाम शास्त्रव इस बात का सागी है कि वैष्णव धर्म की द्वाय गका पर ना चूकी थी। कृष्ण का धर्म सदा से इस विषय में उमुक्त और उदाहर रहा है। उसके बाट बानी गनिया में क्या शुभ बात में क्या पूर्व-अध्य कात में मथुरा की श्री ज्यों की त्या बनी रही और मुमतात कात में अनेक सर्ग-गमिनों का साधना करते हुए उदने कभी अपना अमृतक मत नहीं किया।

पद्महवी गती में तो मथुरा में ब्रजगवधम व जागरण की पूरी सहर भा गई। यही क्या, कहना यह चाहिए कि उस सहर की जूहामणि मथुरा रही। गवधो बल्लभ चतय, हिन हरिवंश आदि सभी भाषायों ने ब्रज-रज रमा कर ही अपना प्रवर्तन किए। साथ ही संगीत साहित्य मुख्यतः ब्रज भाषा के गेय पदा का जा कुवर-भंडार उन महानुभावा व अनुग्रह में हम प्राप्त हुआ, वह भारत की ही नहीं ससार की एक अप्रुब और अमर निधि है। वनमान हिंदुस्तानी संगीत के युग-गुरुप तानसेन ब्रज भूमि के स्वामी हरिदास का ही दंत हैं।

भगवाद् की भावपूर्ण भवा-पूजा और उमंग कारण समस्त सलित वसाया एवं मुकुमार शिल्पा की जा उन्नति मथुरा में हुई, उसी का प्रभाव हम राजस्थानी और पहाड़ी चित्र कला तथा अन्य कलाभा और सभी प्रकार की सुश्रुति में पान हैं। समस्त भारतीय कला का मेरु-दंड भगवाद् का लीलावधु ही है। क्या साहित्य क्या संगीत, क्या चित्र कला, क्या मूर्ति कला क्या अन्य ललित कला—सभी लीला वधुधारी कृष्ण पर आधृत हैं। फलतः इन सभी मुकुमार शिल्पों का उत्तम मथुरा एवं ब्रज भूमि है।

ऐसी मथुरा नगरी ब्रज भूमि सुतरा गुरमन जनपद के विषय में ज्ञानवागात्मक साहित्य की अत्यंत वाछा और अपेक्षा है। स्वनाम-धन्य ब्राह्मण महात्म्य ने १६वीं गती में इस काव्य का आरंभ किया, किंतु उनका वह काव्य एक तो पहला प्रयत्न था दूसरे दिग्गो भाषा में फलतः उनका नाम से जनता वंचित हो रही।

अब हमारे प्रिय बधु श्री प्रभुदयाल जा मोतल बद्ध-परिकर होकर इस महत् प्रयास में जुट गए और अपने-वर्षों के सतत परिश्रम से उन्होंने कई खंडों में जा ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत किया, वह निस्संदेह अनुपम है और अप्रुब है। मथुरा निवासी होने के कारण वृष्णव होने के कारण ममन होने के कारण और साथ ही सुश्रुति-संपन्न होने के कारण यह काम उही के श्रुते का था और उन्होंने इन रूप-स्वरूप के साथ पूरा किया है। इसके लिए व हम सबका बधाई और साधुवाद के पान हैं।

मुझे विश्वास है उनके इस श्लाघ्य परिश्रम का समुचित आदर होगा। इतना ही नहीं, इस कृति के अनुकरण पर काशी अयाप्पा, हरद्वार और तीर्थराज प्रयाग पर भी ज्ञानकोशात्मक रचनाएं प्रस्तुत की जावगी। उत्तर प्रदेश का यह महाभाग्य है कि मत्स्य महापुरियों में से चार यहां हैं। स्वयं तीर्थराज प्रयाग अपने ही प्रशंस में बिराजते हैं, और भारत का मुकुटमणि धदरी विशाल भी यही का पुण्य धाम है।

मुझे यह भी विश्वास है कि मोतल जी के इस ग्रंथ-रत्न का समुचित समादर तो हागा ही, साथ ही उनके इस पथ का अनुसरण हमारे लेखकों की उदीपमान पीढ़ी अवश्य करेगी और ऐसी परिश्रम-साध्य कृतियां से ही हिंदी साहित्य के भंडार का समृद्ध बनावगी।

भारत कला भवन,

काशी हिंदू विश्वविद्यालय,

वशांत कृ० ११ (श्री बल्लभ जयती) २०२३ वि०

—राय कृष्णदास

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
रामेश्वर मन्दिर, चौरागीतमा	११७	१५ बानों (आश्विन शु० १२) —	१०६
व्यामामुर गुफा पंच पादव	११७	चमत्तीवन शेषगायी	१०७
विविध द्रव्यवर्णन	११७	१० पंगाम (आश्विन शु० १०) —	१०७
श्रीर दव स्थान	११७	फार्नन	१०७
श्री गान्धुलाचन्द्रमा जी	११७	१० सारगड (आश्विन शु० १०) —	१०७
श्री मदनमाह्न जी	११७	१० चौरघाट (आश्विन शु० १५) —	१०७
कुड सरावर कूपानि	११८	रामघाट	१०८
विमला कुड घम कुड	११८	१० वच्छगन-मर्द (कानिक वृ० १) —	१०८
चरण पहारी	११८	प्रथम माग क प्रमुख स्थल	१०८
१० बरनाला (आश्विन शु० ३-५) —	११८	भद्रवन मुजवन भाडीरवन	१०८
बरनाला श्रीर उमका मन्दिर	११८	माग वलवन	१०८
लाली जी का मन्दिर	११८	द्वितीय माग क प्रमुख स्थल	१०८
बरनाला क निकटवर्ती स्थल	११८	न नौ-मैमरी	१०८
विनामाट दानगट मानगट	१००	चौमुडा-भान्दर जैन	१०८
मारुटी, साकरीनार गह्वरवन	१००	छटीकरा-भान्दरगावि	१०८
जयपुरवाता मन्दिर मानावर	१२०	२० वृदावन (कानिक वृ० २-८) —	१०८
मुनहरा की कर्मगडो ऊचागाव	१२१	वृदावन श्रीर उमका महत्त्व	१०८
कर्म करहना	१२१	नाम का अस्मियाय	१०८
बरनाला क उमका	१२१	वृदावन के स्थानीय स्थल	१०८
११ सकत (आश्विन शु० ६) —	१२१	कगीघाट चौरघाट, कालीन्ह	१०८
प्रेम सरावर	१२२	दावानल कुड शृगारवट	१०८
१२ नगाव (आश्विन शु० ७-८) —	१२२	कगीवट निधुवन सवाकुज	१०८
नगाव श्रीर उमका दशनीय स्थल	१२२	गतमल्ल जानगूडी बह्नुकुड	१०८
नगाव जा का मन्दिर, वृद्धबाबू	१२२	वृदावन के मन्दिर-वालय	१०८
एक प्रांग दा दह नगीशर	१२२	श्री गाविन्व जी	१०८
हाऊ-बिलाऊ दधिमयन माट	१२८	श्रीमदनमाह्न जी	१०८
निरक पावन सरावर	१२४	श्री गायीनाथ जी	१०८
रोटीरा राजनाल विनाया	१२८	श्री युगकिंगार जी	१०८
सन्निवन उद्धव कपारा	१२४	श्री गधावल्लभ जी	१०८
१३ बही बडेन (आश्विन शु० १०) —	१२५	श्री राधादामादर जी	१०८
जाव कानिलावन	१२५	श्री राधारमण जी	१०८
दाया बठन	१२५	श्री राजाविनाद जी	१०८
कावन (आश्विन शु० ११) —	१२५	श्री राधामदनमाह्न जी	१०८
कामर दुवासा आश्रम	१२५	श्री श्यामपुंर जी	१०८
दहागाव, रासोनी	१२६		

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
श्री दावेविहारी जी	१३७	मथुरा की परिचरमा—	१४६
श्री रामविहारी जी	१३८	मथुरा के घाट	१४६
श्री गारुलाल जी	१३८	त्रिभुवनघाट	१४६
टट्टी सस्थान न ठापुर	१३८	सताबुज दुवागा आश्रम	१४९
श्री गणेश्वर महादेव	१३८	घाटा न मंदिर—दवालय	१४९
श्री बनखडी महादेव	१३८	चविवादेवी बटुक भरव	१५१
मीराबाई का मन्दिर	१३८	श्री दाऊजी—मदनमोहन जी	१४०
श्री रामजी का मन्दिर	१३६	श्री गांगुनाथ जी	१४२
लालाबाबू का मन्दिर	१३६	ध्रुव टीला नारन टीला	१४२
रगजी का मन्दिर	१३६	नाग टीला बनि टीला	१४२
ब्रह्मचारी जी का मन्दिर	१४०	महापिताला	१४२
गाहजी का मन्दिर	१४०	परिचरमा न दगनीय स्थल	१४३
अय मन्दिर, अय दगनीय स्थल	१४०	रगभूमि रगेश्वर महादेव	१४३
भतरीड—भक्रूर घाट	१४१	मत्तमभुद्री रूप नसवारा कूआ	१४३
मानसरोवर, पानीगांव	१४१	बनखडेश्वर हनुमान गायत्री टीला	१४३
२१ लोहबन (कातिक ४० ६)—	१४१	निवताल, ककाली टीला	१४४
आनदी और बदी	१४०	बलभद्रकु ड, भूनेश्वर महादेव	१४४
२० बलदेव (कातिक ४० ७)—	१४२	पानराबु ड	१४४
२३ गाकुल (कातिक ४० ८)—	१४२	महपुरा	१४४
महाबन श्रीर उत्सव दगनीय स्थल	१४२	श्री केशवजी का मन्दिर	१४५
श्यामलला मन्दिर छटी पालना	१४३	महाविद्या, रामलीला मैदान	१४६
यागमाया मन्दिर तृणावर्तारि	१४३	सरस्वती नाला सरस्वतीकु ड	१४६
महामहाराय, मथुरानाथ जी	१४३	चामु डदेवी गानेश्वर	१४६
चिताहरण ब्रह्माड घाट	१४४	गणेशघाट, दगाश्रमघाट	१४७
यमलाजु न, पूननासार	१४४	सरस्वती संगम घाट	१४८
रमणरती	१४४	अबरीपटीला, चक्रतीर्थघाट	१४८
महाबन, क जसव—मेले	१४४	मामतीय घाट, बकु टघाट	१४८
गाकुल और उसके दगनीय स्थल	१४४	कृष्णगंगा घाट	१४८
श्री गोकुलनाथ जी का मन्दिर	१४७	धारापत्तन घाट घटाभरणघाट	१४८
श्री राजाठाकुर का मन्दिर	१४७	कस निता	१४८
श्री गोपाललाल जी मन्दिर	१४७	सयमनघाट सतघाट	१४६
मीरवाला मन्दिर	१४७	अनिकु डा घाट	१४६
घाट, बठकें, उत्सव—मेले	१४८	श्री द्वारिकाधीश जी का मन्दिर	१४६
कर्णविल, बोइला	१४८	श्री गतश्रमनारायण जी	
रावल	१४८	का मन्दिर	१५०